डॉ. मालती

सघन संवेदनशीलता की प्रक्रिया : अनुवाद

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। अतः भारत की शिक्षा प्रणाली में एक से अधिक भाषाओं के शिक्षण का प्रावधान सदा से रहा है और इसी क्रम में अनुवाद या तर्जुमा या ट्रांसलेशन स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग रहा है। स्कूली विद्यार्थी हिंदी या क्षेत्रीय भाषा से अंग्रेजी भाषा में तथा इसी प्रकार अंग्रेजी से हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद का अभ्यास करता रहा है। उच्च शिक्षा के स्तर पर भी अनुवाद शैक्षिक पाठ्यक्रम का अंग बना रहा है। भाषा और साहित्य के अध्ययन से जुड़े पाठ्यक्रमों में तो अनुवाद अध्ययन का महत्त्वपूर्ण या वैकल्पिक विषय रहा ही है और आज अनुवाद किसी पाठ्यक्रम के अंतर्गत पढ़ा जाने वाला गौण या वैकल्पिक विषय नहीं रहा है। भाषा तथा भाषा-विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में अनुवाद एक स्वतंत्र विधा के रूप में अध्ययन का विषय बन चुका है। इसी प्रकार, आज अनुवाद केवल भाषा या साहित्यिक रचनाओं को अन्य भाषा में प्रस्तुत करने वाला तंत्र या साधन मात्र नहीं रह गया। इसका दायरा बहुत विस्तृत और व्यापक हो गया है। अब अनुवाद शिक्षा, संस्कृति, भाषा अध्ययन से होता हुआ ज्ञान-विज्ञान तथा व्यावसायिक-व्यापारिक गतिविधियों में भी अपनी पैठ बना चुका है। अनुवाद के इस क्षेत्र-विस्तार के मूल में अनेक कारण हैं।

अनुवाद की भूमिका के इस व्यापक विकास के कारणों का प्रथम संकेत अंग्रेजी उपनिवेशवाद में देखा जा सकता है। भारत में अनुवाद का, आज वाला स्वरूप इसी गुलामी के तंत्र के कारण ही उभरा। गुलाम को स्वामी की भाषा और संस्कृति के आगे घुटने टेकने ही पड़ते हैं। इसी विवशता के चलते भारतीयों को विदेशी भाषा को अपनाना पड़ा और इसी समय विदेशी सत्ता को भी अपनी प्रशासन व्यवस्था के लिए क्षेत्रीय कर्मचारियों की आवश्यकता हुई। क्षेत्रीय कर्मचारियों को प्रशासन की सामान्य जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से ब्रिटिश राज ने देशी भाषाओं के अध्ययन का उपक्रम प्रारंभ किया तथा

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देशी या क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन का कार्य प्रारंभ हुआ। इसी क्रम में ब्रिटिश शिक्षा नीति के तहत जिस शिक्षा प्रणाली का प्रसार हुआ उसमें प्राथमिक शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ रहीं तथा अन्य शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा बनी। इसी परंपरा में अंग्रेजी भाषा तथा पश्चिमी भाषाओं में विद्यमान शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान तथा अन्य विषयों से संबंधित पुस्तकों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद कार्य विधिवत प्रारंभ किया गया। इस समय यह अनुवाद कार्य विदेशी सत्ता की प्रशासन सुविधा की दृष्टि से किया गया था। अनुवाद को बढ़ावा इसी समय से मिलना शुरू हुआ था और इसी दौरान रवींद्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद ने उन्हें नोबेल सम्मान का गौरव प्रदान किया था। अंग्रेजी अनुवाद माध्यम से ही टैगोर विश्वविख्यात साहित्यकार के रूप में जाने गए थे।

अनुवाद को बढ़ावा इस मानसिकता से भी मिला कि अनुवाद माध्यम से आप क्षेत्रीय सीमाओं से बाहर समस्त विश्व से जुड़ जाते हैं। आपका प्रभा वलय वैश्विक हो जाता है। अनुवाद की महिमा एक अन्य कारण से भी बढ़ी। ज्ञान-विज्ञान की नित्य नई उपलब्धियों ने जहाँ आम आदमी के निजी एवं पारिवारिक जीवन को सुख-सुविधाओं से भर दिया, वहीं आम आदमी की बुद्धि को भी ज्ञान-चमत्कार जगाने के कार्य में भागीदारी करने की महत्वाकांक्षा से भी भर दिया। इसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए भी, सभी भाषाओं में विद्यमान ज्ञान-विज्ञान को अनुवाद माध्यम से अपनी भाषा में उतारने के अभियान ने भी अनुवाद-कला को कुशलता की व्यावहारिक आवश्यकता बना दिया। निज भाषा और संस्कृति से अनन्य अनुराग, राजनीतिक विवशता, व्यावसायिक-व्यापारिक सुविधा तथा ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों और आयामों में अपनी पहचान दर्ज करने की आकांक्षा तथा ऐसे ही कुछ अन्य कारणों ने अनुवाद को आज एक महत्त्वपूर्ण एवं स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

आज के भूमंडलीकरण के परिवेश में समस्त विश्व एक ग्राम में तब्दील हो चुका है और जिस प्रकार एक ग्राम के निवासी अपने ग्राम की सूक्ष्म से स्थूल तथा इसी प्रकार सामान्य से विशिष्ट सभी खूबियों को पहचानते हैं उसी तरह आज विश्व ग्राम का प्रत्येक कुल या परिवार या राष्ट्र एक-दूसरे से वैसी ही निकटता का अहसास करना चाहता है। इसके लिए परस्पर संवाद का होना जरूरी है और बहुभाषिकता वाले परिवेश में अनुवाद इस संवाद को संभव बनाने वाला मुख्य साधन या माध्यम बनता है। आज का विश्व यह अनुवाद-संवाद कभी शब्द-अर्थ वाली भाषा से साधता है तो कभी संकेतों-प्रतीकों वाली कंप्यूटर की भाषा से।

आज के मशीनी अनुवाद वाले युग से बहुत पहले भी अनुवाद का अस्तित्व था।

भारतीय साहित्य में अनुवाद या पुनर्कथन की परंपरा बहुत पुरानी है। समस्त वैदिक साहित्य वाचिक परंपरा में विकसित हुआ और इसे हर बार अनुवाद की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा। कभी 'अन्वय' या 'पैराफ्रेजिंग' के रूप में एक ही भाषा माध्यम से तो कभी पालि, प्राकृत आदि दूसरी भाषाओं में यह साहित्य अनूदित होता रहा। भारत का मध्ययुगीन साहित्य भी अनूदित कोटि का कहा जा सकता है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में संस्कृत साहित्य को ही दुबारा से या बार-बार कहा गया है। यहाँ हमें यह रोचक तथ्य भी स्वीकारना होगा कि यह अनुवाद शब्दानुवाद कोटि का नहीं था। यह छायानुवाद और भावानुवाद कोटि का रहा तथा इसे मूल का पुनः प्रस्तुतीकरण भी कहा जा सकता है। आज भी अनुवाद-कला भावानुवाद, छायानुवाद, पुनः प्रस्तुतीकरण जैसे सवालों से जूझती नजर आती है।

अनुवाद का कार्य मध्य युग में प्रशासकों ने भी करवाया। कश्मीर के शासकों ने तथा बाद में मुगल शासकों ने भी संस्कृत के वेदों तथा अन्य साहित्यों का अनुवाद फारसी तथा अरबी भाषा में करवाया। अंग्रेजी प्रशासन के दौरान भी साहित्यिक तथा गैर-साहित्यिक कृतियों का अनुवाद कार्य हुआ। अंग्रेजी भाषा में भी संस्कृत की अनेक रचनाओं का अनुवाद हुआ। इसी समय से अंग्रेजी माध्यम से देशी भाषाओं तथा भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कार्य होता रहा।

समय के साथ अनुवाद शिक्षा और साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण विधा बनता गया और आज के बहुभाषिक परिवेश में अनुवाद प्रत्येक व्यक्ति के मानस में भी सक्रिय होता गया। आज के विश्व ग्राम का आम नागरिक सोचता एक भाषा में है तथा बोलता दूसरी भाषा में है। व्यक्ति स्तर पर तो ऐसे अनुवादक को पूरी छूट रहती है, लेकिन जब अनुवादक के रूप में वह किसी अन्य के लेखन या कथन का अनुवाद करता है तब उसे ऐसी छूट नहीं रहती। इस स्थिति में उसे कवि, कलाकार या भाषणकर्ता के व्यक्तित्व से, उसकी संवेदना या तर्कशीलता से तादात्म्य साधना होता है। जब तक अनुवादक में बौद्धिक तर्कशीलता और आत्मिक संवेदना नहीं होगी तब तक वह विषय विशेष के अनुवाद के साथ न्याय नहीं कर पाएगा। उदाहरण के तौर पर, यदि अनुवादक विज्ञान की शाखाओं का जानकार नहीं है तो वह विज्ञान विषय के लेख या भाषण का अनुवाद नहीं कर पाएगा। इसी प्रकार, यदि उसमें कलाकार की संवेदना नहीं है तो वह कलात्मक या साहित्यिक रचना के सौंदर्य को पूरी ईमानदारी से ग्रहण ही नहीं कर पाएगा तो अनुवाद क्या करेगा। इसी प्रकार, अनुवादक और दुभाषिए को दोनों भाषाओं के मनोविज्ञान, उनकी संस्कृति और उनकी अभिव्यंजना शक्ति की जानकारी हासिल करनी होगी। दोनों भाषाओं की प्रकृति को जानने वाला तथा दोनों भाषाओं पर अधिकार रखने

वाला अनुवादक या दुभाषिया ही भाषा की बारीकियों को उनकी संवेदना के साथ दूसरी भाषा में उतारने में सक्षम होगा।

तात्पर्य यह है कि अनुवादक या दुभाषिया को मूल कलाकार, लेखक या बुद्धिजीवी के समान संवेदना, प्रतिभा और प्रत्युत्पन्न मति वाला होना चाहिए और विडंबना यह है कि उसके अनुवाद को मौलिक रचना वाला प्रथम कोटि का सम्मान नहीं मिल पाता। अनुवाद के प्रति दोयम स्तर वाली मानसिकता के पक्ष में तर्क दिया जा सकता है कि अनुवाद करते समय अनुवाद में बहुत कुछ छूट भी जाता है। साथ ही, कुछ ऐसा भी रह जाता है जिसका अनुवाद नहीं किया जा सकता या नहीं हो पाता। खैर, अनुवाद बड़ी महत्त्वपूर्ण, बड़ी सूक्ष्म और अति संवेदनशील बौद्धिक क्रिया है। अनुवादक या दुभाषिए के स्तर पर भाषा और कथ्य को लेकर सावधानी हटी तो फिर जो दुर्घटना घटेगी वह बहुत ही घातक हो सकती है। अनुवादक और दुभाषिए को कथन के संदेश को, उसकी आत्मा को और उसकी विषय व्यवस्था को जरा-सा भी आघात पहुँचाए बिना उसे दूसरी भाषा के शब्दों, प्रतीकों, संकेतों में ऐसे समाना है जिससे मूल का आत्मिक एवं भाषिक सौंदर्य सबके सामने उजागर हो जाए। दो भाषाओं के बीच होने वाला अनुवाद कार्य सदा एक समान कुशलता अथवा कठोर परिश्रम की अपेक्षा नहीं करता है। यानी यदि अनुवाद कार्य को समान सांस्कृतिक अनुभवों वाली किंतु भिन्न प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं के बीच हो रहा है तो अनुवादक को संकेतों, प्रतीकों और शब्दों का चयन करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। अनुवादक या दुभाषिए को तब अधिक कठिनाई होती है जब उसे दो पूरी तरह से अपरिचित या असमान संस्कृतियों एवं भाषाओं के बीच अनुवाद करना होता है तब उसे एक भाषा के संकेतों, प्रतीकों और शब्दों के समतुल्य या समकक्ष मुहावरों की खोज के लिए काफी मशक्कत करनी होती है और इस स्थिति में जानलेवा लापरवाहियों के लिए गुंजाइश अधिक रहती है। प्रत्युत्पन्न मति से युक्त भाषाओं के मर्मज्ञ, विषय की जानकारी तथा परकाय प्रवेश जैसी दूसरे के मन की संवेदना की अनुभूति से भरपूरे बुद्धिजीवी ही अनुवाद करने का या दुभाषिए का चुनौतियों और जोखिमों से भरा काम कर सकता है और तभी उसका यह काम ही विश्व की समस्त प्रगति का आश्वासन हो सकता है। अनुवाद से जुड़े ये मसले तथा और भी बहुत सारे सवाल बुद्धिजीवियों, कलाकारों एवं भाषाविदों की चिंतना के विषय हैं। चर्चा चालू रहनी चाहिए।

❑

Dr. Shiben Krishen Raina

Translation Studies: Significance and Scope

Translation Studies can very safely be included as an important genre in the domain of Literary Criticism since translation is an art prompting to peep into the diversified lingual, cultural and literary content of a source language and thus highlighting/appreciating the essence and niceties of the literature of that particular translated language. In the context of Indian Studies, keeping in view the multilingual and pluralistic cultural nature of our country, translation has an important role to play. It is through translation that we can look into the rich heritage of India as one integrated unit and feel proud of our cultural legacy. The relevance of translation as multi-faceted and a multi-dimensional activity and its international importance as a socio-cultural bridge between varoius countries has grown over the years. In the present day circumstances when things are fast moving ahead globally, not only countries and societies need to interact with each other closely, but individuals too need to have contact with members of other communities/societies that are spread over different parts of the country/world. In order to cater to these needs translation has become an important activity that satisfies individual, societal and national needs.

It goes without saying that the significance, scope and relevance of translation in our daily life is multi-dimensional and extensive. It is through translation we know about all the developments in communication and technology and keep abreast of the latest discoveries in the various fields of knowledge, and also have access through translation to the literature of several languages and to the different events happening in the world. India has had close links with ancient civilisations such as Greek, Egyptian and Chinese. This interactive relationship would have been impossible without

the knowledge of the various languages spoken by the different communities and nations. This is how human beings realised the importance of translation long ago. Needless to mention here that the relevance and importance of translation has increased greatly in today's fast changing world. Today with the growing zest for knowledge in human minds there is a great need of translation in the fields of education, science and technology, mass communication, trade and business, literature, religion, tourism etc.

Defining Translation

Broadly speaking,translation turns a text of source language (SL) into a correct and understandable version of target language (TL) without losing the suggestion of the original. Many people think that being bilingual is all that is needed to be a translator. That is not true. Being bilingual is an important pre-requisite, no doubt, but translation skills are built and developed on the basis of one's own long drawn-out communicative and writing experiences/skills in both the languages. As a matter of fact translation is a process based on the theory of extracting the meaning of a text from its present form and reproduce that with different form of a second language.

Conventionally, it is suggested that translators should meet three requirements, namely: (1) Familiarity with the source language, (2) Familiarity with the target languages; and (3) Familiarity with the subject matter to perform the job successfully. Based on this concept, the translator discovers the meaning behind the forms in the source language (SL) and does his best to reproduce the same meaning in the target language (TL) using the TL forms and structures to the best of his knowledge. Naturally what changes are the form and the grammar and what should remain unchanged is the meaning and the message. (Larson) Therefore, the most agreeable definition of translation could be : selection of the nearest equivalent of the source languae in a target language.

Computers,no doubt, are already being used to translate one language into another, but humans are still involved in the process either through pre-writing or post-editing. There is no way that a computer can ever be able to translate languages the way a human being could since language uses metaphor/imagery to convey a particular meaning. Translation is more than simply looking up a few equivalents in a dictionary. A quality translation requires a thorough knowledge of both the source language (SL) and the target language (TL).

Translation Theory, Practice and Process

Successful translation is indicative of how closely it lives up to the expectations as: reproducing exactly as far as possible the meaning of the source text,using natural forms of the receptor/target language in such a

way as is appropriate to the kind of text being translated and expressing all aspects of the meaning closely and readily understandable to the intended audience/reader.Technically, translation is a process to extract the meaning of a text from its current forms and reproduce that meaning in different forms of another language. Translation has now been recognized as an independent field of study translator being the focal element in the process of translation. A successful translator is he who is not a mechanical translator but who recreates as well. We may say that he is a co-creator of the TL text. In fact, for a translator knowledge of two or more languages is essential. This involves not only a working knowledge of two different languages but also the knowledge of two linguistic systems as also their literature and culture.

Linguiustically, translation consists of studying the lexicon, grammatical structure, communication situation, and cultural context of the source language and its text, analyzing it in order to determine its meaning, and then reconstructing the same meaning using the lexicon and grammatical structure which are appropriate in the target language and its cultural context. The process of translation starts with the comprehension of the source text closely and after discovering the meaning of the text, translator re-expresses the meaning he has drawn out into the receptor/target language in such a way that there is minimal loss in the transformation of meaning into the translated language.

In practice, there is always considerable variation in the types of translations produced by various translators of a particular text. This is because translation is essentially an Art and not Science. So many factors including proficiency in language, cultural background, writing flair etc. determine the quality of translation and it is because of that no two translations seem to be alike if not averse.

Accommodation in Translation

As already said translation turns a communication in one language into a correct and understandable version of that communication in another language. Sometimes a translator has to take certain liberties with the original text in order to re-create the mood and style of the original. This, in other words is called 'accommodation.' This has four dimensions: cultural accommodation; collocation accommodation; ideological accommodation; and aesthetic accommodation. Accommodation is considered a synonym of adaptation which means changes are made so the target text produced is in line with the spirit of the original. Accommodation in translation is both necessary and desirable since it helps in maintaining the source text's essence and impact effectively. There is an interesting saying: A translation

is like a woman: if it is faithful, it is not beautiful; if it is beautiful, it is not faithful. That is to say if you want to be faithful with the text while translating you are bound to lose the beauty of the translated text and if you try to maintain the beauty of the translated text you are sure to be unfaithful with the original text. Faithfulness was once considered the iron rule in translation process but over the years when we take a closer look, accommodation, or adaptation, is found in most published translations and it has become a necessity too since keeping in view the averse cultural/lingual/geographical/historical/political diversifications and backgrounds of various languages and their literatures, accommodation,if not compromising, is almost obligatory.

Accommodation, too, has to be carried out very sensibly, more especially when it comes to translating poetry or any such text which is highly emotive and artistic in nature.For example translating poetry has never been so simple. Robert Frost once said, “Poetry is what gets lost in translation.” This is a sufficient evidence of the difficulty involved in translation of poetry. Because poetry is fundamentally valuable for its aesthetic value, therefore, aesthetic accommodation becomes an art instead of a basic requirement. A good poetry translator with a good measure of accommodation and adequate knowledge of aesthetic traditions of different cultures and languages, can be better appreciated by the target reader and can achieve the required effect.

❑

डॉ. सुरेश सिंहल

विज्ञान, शिल्प और कला के निकष पर अनुवाद

अनुवाद को विज्ञान, शिल्प और कला की कसौटियों पर परखना एक विवादास्पद विषय रहा है। विभिन्न चिंतकों ने अनुवाद को भिन्न-भिन्न प्रकार से देखा-परखा है। विद्वानों का एक वर्ग इसे विज्ञान, दूसरा वर्ग शिल्प और तीसरा कला मानकर चलता है। वैसे अनुवाद का स्पष्टतः श्रेणीगत विभाजन करना कई प्रश्नों और समस्याओं को निमंत्रण देना है, क्योंकि अपने स्वरूप और प्रकृति में अनुवाद संश्लिष्ट विधा एवं प्रक्रिया है।

सर्वप्रथम अनुवाद को विज्ञान की दृष्टि से परखते हैं। विज्ञान किसी भी विषय का व्यवस्थित तथा विशिष्ट ज्ञान होता है। किसी भी विषय के जितने अंश का व्यवस्थित और वैज्ञानिक विवेचन किया जा सकता है, उतने अंश का वह अध्ययन विज्ञान की सीमा में आता है। उसमें विकल्प की गुंजाइश प्रायः नहीं होती या कम ही होती है। अनुवाद विषय प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है तथा वास्तविक अनुवाद करने से पहले की चिंतन-प्रक्रिया तुलनात्मक या व्यतिरेकी भाषाविज्ञान पर ही पूर्णतः आधारित है। तुलना के आधार पर ही स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ संबंधी समानताओं-असमानताओं पर विचार किया जाता है। उसके बाद इससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः निश्चित नियमों का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार अनुवाद-प्रक्रिया में प्रवृत्त होने से पहले जो कुछ पृष्ठभूमि अनुवादक के ज़ेहन में होती है, वह पूर्णतः एक वैज्ञानिक प्रक्रिया ही होती है। दोनों भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषक के आधार पर निर्धारित किए गए विज्ञान-सम्मत नियम ही उसे संभव बनाते हैं। अनुवाद की पृष्ठभूमि में स्थित यह समस्त अध्ययन-विश्लेषण विज्ञान के ही अंतर्गत आता है। अनुवाद के इस वैज्ञानिक-पक्ष को जानने वाला अनुवादक उस अनुवादक की तुलना में कहीं अच्छा अनुवाद कर सकता है जो इससे परिचित नहीं है।

अनुवाद को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने पर यह ज्ञात होता है कि अनुवादक अनुवाद

का वस्तुनिष्ठता, तर्कसम्मता, निरपेक्षता, सटीकता, शुद्धता आदि तत्त्वों के आधार पर विश्लेषण एवं अध्ययन करता है। वह मूल कृति के सही अर्थों को समझकर अनुवाद करने की चेष्टा करता है। अनुवादक भाषा के नियमों का पालन करता है। वह अनुवाद-अध्ययन में अपने व्यक्तित्व को, अपनी भावना और अपनी कल्पना को संश्लिष्ट नहीं करता। यह सारी अनुवाद प्रक्रिया बौद्धिक होती है, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि वाला अनुवादक एक तथ्यात्मक व्यक्ति होता है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में विभिन्न यंत्रों का प्रयोग करता है, उसी प्रकार अनुवादक भी शब्दकोश, विश्वकोश, व्याकरण-नियमावली आदि जैसे अनुवाद संबंधी औजारों का प्रयोग करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनुवाद को विज्ञान की दृष्टि से परखने वाले लोग अनुवाद की सटीकता एवं शुद्धता पर अधिक बल देते हैं।

इस दृष्टि से यदि वैज्ञानिक और अनुवादक में तुलना की जाए तो हम देखते हैं कि वैज्ञानिक तो केवल सत्य की खोज करता है और आविष्कार करता है, किंतु अनुवादक ऐसा नहीं करता, वह तो उसको पुनः प्रस्तुत करता है। अनुवादक वैज्ञानिक तकनीक की दृष्टि से ही वैज्ञानिक होता है, किंतु परिणाम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होता है। वह कोई नया निर्माण नहीं करता। अतः हम वैज्ञानिक-अनुवादक द्वारा किए गए अनुवाद को प्रक्रिया की दृष्टि से ही विज्ञान के निकट पाते हैं, उपलब्धि की दृष्टि से नहीं। इस संदर्भ में यह कहना भी प्रासंगिक है कि इस प्रकार का अनुवाद केवल साहित्येतर विषयों का ही संभव है। इस संदर्भ में 'थियोदोर सैवरी' का कहना है कि -- ''A translation of a scientific work may deserve to be described as a perfect translation in a sense which few literary translations call match.'' इस कथन से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक कृति का अनुवाद परफैक्ट होता है। ऐसे शुद्ध वैज्ञानिक अनुवाद की टक्कर कोई भी कलात्मक अनुवाद नहीं ले सकता। कलात्मक अर्थात् साहित्यिक अनुवाद वैज्ञानिक अनुवाद के समकक्ष नहीं हो सकता।

स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अनुवाद में कुछ निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता है। ऐसा अनुवाद तथ्यपरक, तटस्थ, सत्यनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ एवं प्रामाणिक होता है। एक वैज्ञानिक की तरह उसे स्रोत भाषा के भावों को लक्ष्य भाषा में व्यक्त करने के लिए कोश, व्याकरण आदि औजारों की सहायता लेनी पड़ती है। अनुवादक के लिए आवश्यक है कि वह किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो और वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाते हुए अनुवाद कर्म में प्रवृत्त हो।

अनुवाद को विज्ञान की कसौटी पर परखने के बाद अब हम शिल्प और कला की कसौटी पर आते हैं। कला और शिल्प में अंतर तो है, किंतु प्रायः प्रत्येक कला

में यथासंभव शिल्प की आवश्यकता होती है और प्रत्येक शिल्प में थोड़ी-बहुत कला अपेक्षित होती है। कला एक प्रकार की सृजनात्मकता है और व्यक्ति में प्रायः सहज अधिक होती है। केवल अभ्यास और शिक्षण से कोई कलाकार नहीं बन सकता, जब तक उसमें सहज प्रतिभा न हो। दूसरी ओर शिल्प को अभ्यास और शिक्षण के द्वारा सीखा जा सकता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में कला और शिल्प का सबसे बड़ा अंतर यह है कि कला में व्यक्ति आत्माभिव्यक्ति करता है, उसका व्यक्तित्व उसमें आ जाता है, जबकि शिल्प में वह न तो आत्माभिव्यक्ति करता है और न ही कुछ अपवादों को छोड़कर उसका व्यक्तित्व ही उसमें आता है।[1]

आज के मशीनी युग में सूचनापरक एवं तथ्यपरक सामग्री की अधिकता दिखाई देती है। जब इस प्रकार का अनुवाद किया जाता है तो वह न तो विज्ञान रह जाता है और न ही कला। वह सिर्फ शिल्प के स्तर तक सिमटकर रह जाता है। समय और पारिश्रमिक की दृष्टि से किया गया अनुवाद प्रायः कम प्रतिभा वाले लोगों द्वारा कर दिया जाता है। परंतु कुछ विद्वान उसे मात्र शिल्प मानने के लिए तैयार नहीं हैं। इयान फिनले के अनुसार अनुवाद शिल्प और कला दोनों हैं। उनका कहना है कि भाषा के प्रयोग की जानकारी अगर शिल्पपरक पक्ष मात्र है तो अनुवाद का एक सृजनात्मक पक्ष भी है जो उसे कला बनाता है।[2]

प्रायः देखने में आता है कि अधिकतर अनुवादक ऐसे होते हैं जो अनुवाद तो कर लेते हैं, लेकिन उनके द्वारा किए गए अनुवाद का स्तर शिल्प से आगे नहीं बढ़ पाता अर्थात् उनके अनुवाद में कलात्मकता का अभाव होता है। साहित्येतर विषयों का अनुवाद प्रायः इस श्रेणी में आता है। योग्यता, अभ्यास और वातावरण आदि से व्यक्ति इस प्रकार का अनुवादक बन सकता है। इसके लिए थोड़ी-बहुत प्रतिभा से भी काम चल जाता है। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे अनुवादक अन्य शिल्पों की तरह ही अनुवाद करते हैं और उनमें सृजनात्मक प्रतिभा न होने से पुनःसृजन की संभावना क्षीण हो जाती है। ऐसा अनुवादक भला 'मेघदूत', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'मैकबेथ', 'गीतांजलि', 'लज्जा', 'सैटेनिक वर्सेस' आदि का अनुवाद कैसे कर सकता है?

अनुवाद को कला मानने का मुख्य आधार यह है कि सहज समतुल्यता की खोज में अनुवादक को प्रायः पुनःसृजन करना पड़ता है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति एवं विशेषताएँ होती हैं और प्रत्येक लेखक की अपनी अभिव्यक्ति शैली होती है। अतः अनुवाद मात्र शाब्दिक भाषांतर नहीं है बल्कि एक प्रकार की पुनरभिव्यक्ति है। यह पुनरभिव्यक्ति तथा अनुवादक की कल्पना एव भाव-प्रवणता लक्ष्य भाषा की प्रकृति, सहज ज्ञान और कलाशीलता के अनुरूप होती है। इस पर अनुवादक के व्यक्तित्व का भी प्रभाव पड़ता

है, क्योंकि यह कला में ही संभव है, विज्ञान में नहीं। इस संदर्भ में डॉ. जी. गोपीनाथन का कहना है कि ''कृतिकार के साथ पूर्ण रूप से तादाकार होकर उसकी आत्मा को पहचानने का काम वही कर सकता है जिसमें कलाकार जैसी सहानुभूति हो। यह कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है कि दुनिया के श्रेष्ठ अनुवादक श्रेष्ठ मौलिक लेखक भी थे। कलाकार की स्वांतः सुखाय की भावना को अनुवादक का भी मूल गुण माना जा सकता है।''[3]

अनुवाद को सृजनात्मक कला का दर्जा देते हुए हम कह सकते हैं कि ''साहित्य में स्रोत भाषा की रचना की सौंदर्य-चेतना, कलात्मकता और ऊष्मा को आत्मसात् करना और उसका समतुल्यतापूर्वक लक्ष्य भाषा में प्रतिस्थापन करना यांत्रिक भाषा-ज्ञान द्वारा संभव नहीं है। इसके लिए अनुवादक का रसज्ञ एवं कला-मर्मज्ञ होना आवश्यक है। इन गुणों से हीन अनुवादक मूल रचना के साथ न्याय नहीं कर सकता।'' अनुवाद में अनुवादक वह आत्माभिव्यक्ति नहीं करता, जो कवि, मूर्तिकार आदि कलाकार अपनी कृति में करते हैं। इस प्रकार अनुवाद उस रूप में तो कला निश्चित ही नहीं है, जिस रूप में काव्य, चित्र, मूर्ति आदि हैं। किंतु यह तय है कि अनुवाद में अनुवादक का व्यक्तित्व अवश्य ही प्रतिभाशाली होता है। इसीलिए एक ही मूल कृति के दो अनुवादकों द्वारा किए गए अनुवाद प्रायः अलग-अलग होते हैं। इस दृष्टि से अनुवादक भी एक सीमा तक सृजनकर्त्ता के रूप में हमारे सामने आता है और वह साहित्यिक अनुवाद के रूप में पुनःसृजन का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मौलिक-सृजन और अनुवाद के रूप में पुनःसृजन का अंतर केवल प्रक्रिया के स्तर पर है। वह मूल-रचना और लेखक की मनोभूमि में गहरे उतरकर उसकी संवेदना और परिवेश को आत्मसात करके लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करता है। इसलिए हर कोई केवल प्रतिभा और अभ्यास के द्वारा ही अच्छा अनुवादक नहीं बन सकता। अन्य अनेक गुणों की भाँति ही यह अनुवाद-कला भी कुछ ही अनुवादकों में होती है और एक सीमा तक सहजात होती है।

अनुवाद को कला की दृष्टि से परखने पर हम पाते हैं कि ऐसे अनुवाद में अर्थ संश्लिष्ट होते हैं, सांकेतिक होते हैं और अनिश्चित भी होते हैं। इसलिए अनुवादक कोरा अनुवादक ही न हो। वह मूल रचना के अर्थ को संपूर्णता में वहन करे, शैली की भंगिमाओं को समझे और उन्हें लक्ष्य भाषा में सुरक्षित रखे। ए.एच. स्मिथ की परिभाषा भी अनुवादक के कलात्मक अथवा साहित्यिक-पक्ष की पुष्टि करती है -- ''To translate is to change into another language retaining as much of the sense as one can, for some of the original effect is almost always lost.'' इसी तथ्य की पुष्टि नाइडा की परिभाषा भी इन शब्दों में करती है -- ''Translating consists in reproducing in receptor language the closest equivalent of the source language message first in terms of the meaning and secondly in terms of the style.'' अतः कलात्मक

अनुवाद वैज्ञानिक अनुवाद से सर्वथा भिन्न होता है, क्योंकि वैज्ञानिक अनुवाद में व्यवस्थित ज्ञान होता है। ज्ञान तर्क-सम्मत, सुसंबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ होता है। इसमें केवल अर्थ ही महत्त्वपूर्ण है, भाषा अर्थ के साथ जुड़ी हुई नहीं होती। अर्थों का अनुवाद आसानी से किया जा सकता है, लेकिन कलात्मक अनुवाद इसके विपरीत होता है।

स्पष्ट है कि अनुवाद न तो पूर्णतः विज्ञान है, न शिल्प और न ही कला। वह एक सीमा तक विज्ञान भी है, शिल्प भी है और कला भी। वस्तुतः प्रत्येक कलाकार-अनुवादक शिल्पी भी होता है और प्रत्येक शिल्पी अनुवादक-कलाकार भी। किसी भी अनूदित रचना के विश्लेषण से यह ज्ञात हो सकता है कि वह अनुवाद शिल्प है या कला है। वास्तव में इसका आधार अनुवाद सामग्री है। जैसी सामग्री होगी, अनुवाद भी वैसा ही होगा। साहित्येतर विषयों का अनुवाद शिल्पी अनुवादक कर सकता है और साहित्यिक विधाओं का अनुवाद कलाकार-अनुवादक कर सकता है। इस संदर्भ में डॉ. जी. गोपीनाथन का कहना है कि ''अनुवाद में समतुल्यता के वैज्ञानिक संतुलन के लिए सृजनात्मक तकनीकों के प्रयोग की आवश्यकता है। कई भाषावैज्ञानिक तो अनुवाद को प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत मानते हैं।''[4] परंतु प्रसिद्ध अनुवादविद्-भाषाविद् जार्ज स्टीनर ने 'ऑफ्टर बाबेल' में लिखा है कि ''अनुवाद के संबंध में अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण तो उसे एक वैज्ञानिक कला मानने में है। यंत्रानुवाद की संभावनाओं ने अनुवाद को एक विज्ञान सिद्ध किया है किंतु इसकी सीमाओं, जैसे कलात्मक एवं शैली तत्त्वों की अंतरण के असमर्थता आदि ने यह भी सिद्ध कर दिया है वह विज्ञान मात्र नहीं है। इसलिए अनुवाद को एक वैज्ञानिक कला और अनुवादक को एक वैज्ञानिक कलाकार के रूप में देखना होगा।''

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अनुवाद को केवल सीमित अर्थ में ही विज्ञान कहा जा सकता है, क्योंकि केवल अभ्यास और शब्द-पर्याय के यांत्रिक प्रयोग से ही कोई आदर्श अनुवादक नहीं बन सकता। इसके लिए उसमें सृजनात्मक प्रतिभा, सहृदयता, कलात्मकता आदि गुण भी अपेक्षित हैं। अनुवाद की प्रक्रिया वैज्ञानिक होती है, किंतु उसका भावगत पक्ष प्रायः कलात्मक ही होता है, विशेष रूप से साहित्यिक अनुवाद में। इस प्रकार एक सफल अनुवाद में वैज्ञानिकता एवं कलात्मकता का मणिकांचन योग होता है।

❑

संदर्भ

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी, 'अनुवाद कला', शब्दकार, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 14-15
2. इयान फिनले, प्रीफेस, ट्रांसलेशन, पृष्ठ 7
3-4. जी. गोपीनाथन, 'अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 24

डॉ. हरीश कुमार सेठी

व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद

सृष्टि के प्राणियों की भाषाओं में बाबेल (गड़बड़) से भाषा-भेद की स्थिति परिव्याप्त है। हालाँकि इस जगत के मानव-मात्र में विचारों के आदान-प्रदान की मूलभूत भावना अनादिकाल से एक ही रही है किंतु भाषा-वैविध्य, भाषा-भेद के चलते सीमाएँ बनी हुई हैं। भाषाएँ पूरी तरह से समान नहीं होतीं, उनमें किसी न किसी स्तर पर, किसी न किसी मात्रा में एक-दूसरे से भिन्नता होती है। अगर उनमें भिन्नता न हो तो वे 'भाषाएँ' न रहकर 'भाषा' हो जाए। भाषाओं की यह विभिन्नता यद्यपि अनेक स्तरों पर होती है लेकिन प्रमुख रूप से भाषा की संरचना और उस भाषा-विशेष के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के स्तर पर इस भिन्नता को परिलक्षित किया जा सकता है। वहीं अगर व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा का संरचनागत ढाँचा मानव के मन-मस्तिष्क पर व्यावहारिक स्तर पर विद्यमान रहता है। किंतु अन्य भाषा (या लक्ष्य भाषा) से साक्षात् होने और उसे सीखने, उसमें सोचने-लिखने अथवा अनुवाद करने की स्थिति में भाषाई भिन्नता समस्याएँ खड़ी करते हैं। कारण, यह जरूरी नहीं कि अन्य भाषा की संरचना उसकी भाषा की संरचना के समान अथवा अर्ध-समान ही हो। इस समस्या से निपटने के एक समाधान के रूप में आधुनिक भाषाविज्ञान ने भाषा का विश्लेषण करने की विधियों का विकास करके 'व्यतिरेकी विश्लेषण' जैसी अवधारणा को प्रस्तुत किया है।

व्यतिरेकी विश्लेषण : अर्थ और स्वरूप

भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों में व्यतिरेकी विश्लेषण का स्थान महत्वपूर्ण है। 'व्यतिरेकी विश्लेषण' अंग्रेजी के 'constrastive analysis' शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसे दो भाषाओं का तुलनात्मक विश्लेषण भी कहा जा सकता है।

'व्यतिरेक' शब्द के अंत में 'ई' भाववाचक प्रत्यय लगने से बना है। 'व्यतिरेक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'रिच' धातु में 'वि' और 'अति' उपसर्ग और अंत में भाववाचक प्रत्यय 'घञ' जोड़ने से हुई है। संस्कृत की 'रिच' धातु का अर्थ होता है -- 'अलग करना' और 'रिच' के पूर्व 'वि' विशेष का और 'अति' अत्यधिक का अर्थाभिव्यंजक है। इस प्रकार वि + अति + रिच + ञ से निर्मित 'व्यतिरेक' का अर्थ है -- 'विरोध या असमानता'। व्यतिरेक शब्द में जब 'ई' भाववाचक प्रत्यय लगाया जाता है तो उससे निर्मित 'व्यतिरेकी' शब्द का अर्थ बनता है -- 'विरोध अथवा असमानता दिखाने वाला।' इस प्रकार अंग्रेजी के constrastive शब्द के लिए हिंदी में 'व्यतिरेकी' शब्द का प्रयोग हो रहा है, इसे contrastive का पर्याय माना गया है। इसी आधार पर Contrastive Lingsuistics के लिए 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' का प्रयोग किया जा रहा है।

'Contrastive Linguistics' के लिए 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' के अतिरिक्त कई अन्य नाम भी मिलते हैं। 'व्यतिरेकी व्याकरण' (Contrastive Grammar), 'भेददर्शी व्याकरण' (Differential Grammar) आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। भारत के प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक और अनुवादविद प्रो. सूरजभान सिंह इसे 'अनुवाद व्याकरण' की संज्ञा प्रदान करते हुए कहते हैं कि ''अनुवाद व्याकरण से तात्पर्य एक ऐसे विशेष व्याकरण से है जो दो भाषाओं के व्याकरणों को साथ लेकर चलता है, उनके बीच समान और असमान संरचनाओं की पहचान करता है, उनका तुलनात्मक विश्लेषण करता है और उनके संभावित अनुवाद पर्याय तथा विकल्प सुलभ कराता है।''[1] वैसे, कुछेक विद्वान 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' के अर्थ में 'तुलनात्मक व्याकरण' (Comparative Grammar) या 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' (Comparative Linguistics) आदि का प्रयोग भी करते हैं, जिनमें दो भाषाओं की तुलना करके उनमें परिव्याप्त समानताओं और विषमताओं को अलगाया जाता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण को 'व्यतिरेकी व्याकरण', 'भेददर्शी व्याकरण', 'तुलनात्मक व्याकरण' या फिर 'अनुवाद व्याकरण' मानने का आधार यह है कि सामान्यतः व्याकरणों के व्याकरण-सम्मत रूपों को ही प्रश्रय दिया जाता है। ये व्याकरण-सम्मत रूप वे तथाकथित मानक रूप होते हैं जिससे भाषा को उसकी संपूर्णता-समग्रता में देखने की दृष्टि कहीं खो जाती है। जबकि 'व्यतिरेकी/भेददर्शी/तुलनात्मक/अनुवाद व्याकरण' के विवेचन में केवल इसी प्रणाली का अवलंब लेकर उसे बोधात्मक नहीं बनाया जा सकता। इसकी विवेचन प्रणाली में स्वरूप की दृष्टि से व्याकरण के मुख्य रूप से दो प्रकारों -- अर्थात् संरचनापरक व्याकरण और संप्रेषणपरक व्याकरण -- का समावेश उपयुक्त रहता है। संरचनापरक व्याकरण का संबंध भाषा-संरचना के व्याकरणिक नियमों से है जबकि संप्रेषणपरक व्याकरण, सामाजिक भाषा-व्यवहार अथवा संप्रेषण के नियमों पर आधारित है। इन प्रकारों के समावेश से

पाठक को जहाँ दोनों भाषाओं की मूलभूत व्याकरणिक व्यवस्थाओं का बोध हो जाता है वहीं संप्रेषण की स्थिति में उनके सही प्रयोगों के रूप में वास्तविक भाषा-व्यवहार का भी पता चल जाता है। अन्य भाषा सीखने वाले विद्यार्थियों और सिखाने वाले अध्यापकों, अनुवाद प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे प्रशिक्षुओं, अनुवादकों, पत्रकारों और भाषाकर्मियों आदि को व्याकरण के इन दोनों प्रकारों की जानकारी होना अपेक्षित होता है ताकि वह भाषा-1 (स्रोत भाषा) में व्यक्त भाव-विचार अर्थात् मूल पाठ की सूक्ष्म अर्थ-छटाओं को भाषा-2 (लक्ष्य भाषा) में सुरक्षित रखते हुए उतनी ही सहज एवं प्रसंगानुकूल भाषा में समझ, सीख और व्यक्त कर सकें। इससे जहाँ अन्य भाषा सीखने, उसमें लेखन कर्म करने और उसमें अनुवाद करने के दौरान स्रोत भाषा की संरचना का प्रभाव नहीं पड़ता वहीं लक्ष्य भाषा की प्रकृति भी आहत नहीं होती। परिणामतः भाषा प्रयोग संदर्भ के अनुकूल सिद्ध हो जाता है, वहीं वह सामाजिक स्वीकार्यता के उपयुक्त भी सिद्ध हो पाता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण : विभिन्न परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने व्यतिरेकी विश्लेषण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। 'रोमानियन-इंग्लिश कंट्रास्टिव एनेलिसिस प्रोजेक्ट' के आयोजकों के अनुसार ''दोनों भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण, शब्दावली एवं लेखन व्यवस्थाओं की तुलना प्रस्तुत करना। इस तुलना का उद्देश्य दोनों भाषाओं में विद्यमान ऐसी संरचनागत समानताओं और असमानताओं पर प्रकाश डालना है जो दोनों भाषाओं के सीखने वालों में मनोवैज्ञानिक उलझने पैदा कर देती हैं।''[2] वहीं 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' पुस्तक के लेखक डॉ. विजयराघव रेड्डी के अनुसार ''दो भाषाओं की समकालिक संरचनाओं को इस तरह आमने-सामने रखा जाए या दो भाषाओं की समकालिक संरचनाओं का इस तरह वैषम्य प्रस्तुत किया जाए कि दोनों में विद्यमान समानताएँ और विषमताएँ या भिन्नताएँ स्पष्टतः प्रकट हो जाएँ।''[3]

डॉ. रमानाथ सहाय के अनुसार, ''व्यतिरेकी भाषावैज्ञानिक विवरणों के आधार पर स्रोत और लक्ष्य भाषाओं के विविध पक्षों की गहराई में समानताएँ और असमानताएँ ढूँढ़ी जाती हैं।''[4] व्यतिरेकी भाषाविज्ञान को परिभाषित करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं -- 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' भाषाविज्ञान के उस प्रकार को कहते हैं, जिसमें दो भाषाओं या भाषा-रूपों की विभिन्न स्तरों पर तुलना करके उनके आपसी विरोधों या व्यतिरेकों (कंट्रास्ट्स) का पता लगाते हैं।'[5]

डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार -- ''व्यतिरेकी विश्लेषण दो वस्तुओं के बीच पाई जाने वाली संरचनात्मक समानता और विषमता के निर्धारण का क्षेत्र है। अतः पहली आवश्यकता है कि दो वस्तुओं को एक-साथ ग्रहण किया जाए और एक साथ ही उनके

बीच की समानता और विषमता की खोज की जाए।"[6]

प्रो. सूरजभान सिंह के अनुसार, "दो भाषाओं के व्याकरण पूरी तरह समान नहीं होते। भाषा के विभिन्न अंगों (ध्वनि, लेखन, व्याकरण, शब्द, अर्थ, वाक्य और संस्कृति) के स्तरों पर दो भाषाओं के बीच कई समान तथा असमान तत्व मिलते हैं। कुछ भाषाओं के बीच समान या असमान तत्वों की मात्रा कम हो सकती है और कुछ के बीच अधिक। दो भाषाओं के बीच असमान तत्व अनुवाद कार्य और भाषा सीखने की प्रक्रिया दोनों में रुकावट पैदा करते हैं। दो भाषाओं के विभिन्न अंगों की संरचनाओं की तुलना कर उसमें समान और असमान तत्वों का विश्लेषण करना व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाता है।"[7]

डॉ. ललित मोहन बहुगुणा ने व्यतिरेकी विश्लेषण को दो भाषाओं की बनावट में केवल उन्हीं बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करने की बात की है जिनमें असमानता होती है। डॉ. बहुगुणा के अनुसार "भाषा विश्लेषण की वह तकनीक, जिसके द्वारा भाषाओं में व्यतिरेक (Contrast) इंगित किया जाता है, व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाती है।"[8]

उक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यतिरेकी विश्लेषण की अवधारणा का बोध हो जाता है। स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण में दो भाषाओं की उन संरचनाओं पर विशेष बल दिया जाता है जो असमान होती हैं, एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। भाषा सीखने और अनुवाद कर्म करने की प्रक्रिया में ये असमान तत्व बाधक सिद्ध होते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण करके दो भाषाओं के ध्वनि, लिपि, पदबंध, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, वाक्य, वाक्य-साँचा, काल, पक्ष, वृत्ति, वचन, पुरुष एवं वाच्य, मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि ढाँचागत रूपी सभी उपादानों और भाषा-विशेष के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों की समकक्ष संरचनाओं के बीच परिव्याप्त व्यतिरेक को स्पष्ट किया जाता है। इस विश्लेषण की निष्पत्तियों से भाषा सीखने-सिखाने वालों, अनुवादकों, मातृभाषा से इतर भाषा में लेखन करने वालों, पत्रकारों आदि को दोनों भाषाओं की सहज अभिव्यक्तियों, मुहावरों, संरचना-नियमों के साथ-साथ भाषा व्यवहार के वास्तविक रूप का बोध हो सकता है। उदाहरण के लिए, हिंदी के परसर्ग 'को' के लिए अंग्रेजी में अलग-अलग संदर्भों में of, worth, by, for, from, costs, to और to have आदि का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार, 'से' परसर्ग के लिए from, for, since और with का प्रयोग किया जाता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण और तुलनात्मक भाषाविज्ञान में अंतर

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान द्वारा दो भाषाओं या भाषा-रूपों की विभिन्न स्तरों पर तुलना करके उनके आपसी विरोधों व्यतिरेकों (कंट्रास्ट्स) का पता लगाते हैं जिससे पता चलता है कि दोनों भाषाएँ किन-किन बातों में समान हैं और किन-किन बातों में असमान हैं। इस तरह 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' एक प्रकार का 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' ही है।

किंतु, तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में तात्विक भेद हैं। इन भेदों को निम्नलिखित संदर्भों में देखा जा सकता है :

1. तुलना-संबंधी आधार-दृष्टि में अंतर : तुलना-संबंधी आधार-दृष्टि में अंतर का आधार यह है कि पहले (तुलनात्मक भाषाविज्ञान) में दो भाषाओं में तुलना के पश्चात समानताओं की खोज पर विशेष बल होता है ताकि उनमें ऐतिहासिक संबंध-सूत्र की स्थापना की जा सके। जबकि दूसरे (अर्थात् व्यतिरेकी भाषाविज्ञान) में विरोधी अथवा असमान बातों की खोज पर बल दिया जाता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान विभिन्न भाषाओं में समानता के तत्वों की खोज कर उन्हें एक भाषा-वर्ग अथवा भाषा-परिवार की भाषाएँ सिद्ध करता है। जबकि व्यतिरेकी भाषाविज्ञान के अंतर्गत दो भाषाओं में व्यतिरेकों या विरोधों (कंट्रास्ट्स) का पता लगाता है ताकि इन तत्वों के बोध से भाषा-शिक्षण अथवा अनुवाद-कार्य में लाभ उठाया जा सके।

2. अध्ययन काल का अंतर : तुलनात्मक भाषाविज्ञान में दो भिन्न-भिन्न कालों की भाषाओं को आपस में तुलना करने का आधार बनाया जाता है। जबकि व्यतिरेकी विश्लेषण में एक ही काल की दो भाषाओं के बीच तुलना की जाती है।

वैसे यह सही है कि व्यतिरेकी विश्लेषण में एक ही काल की दो भाषाओं के बीच तो तुलना की जाती है, लेकिन विशेष बात यह है कि उन दोनों भाषाओं का संबंध आधुनिककाल से होता है। इस तरह भाषाओं के कालों की भिन्नता व्यतिरेकी विश्लेषण और तुलनात्मक भाषाविज्ञान में भेद स्थापित करती है।

3. उद्देश्य के स्तर पर अंतर : तुलनात्मक भाषाविज्ञान का मुख्य उद्देश्य दो अथवा दो से अधिक भाषाओं के बीच भाषिक-परिवार संबंध (Language-family relationship) ढूँढ़ना होता है। ऐसा करके विभिन्न देश-काल और परिवेश में भाषाओं के ऐतिहासिक विकास, भाषा-परिवार, भाषा-संपर्क के साथ-साथ शब्द व्युत्पत्ति के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। यही कारण है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान का अध्ययन-क्षेत्र दो भिन्न कालों की भाषा होती है।

वहीं वर्तमान संदर्भ में भाषा-शिक्षण और अनुवाद या फिर द्विभाषी कोश आदि के लिए उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराना व्यतिरेकी विश्लेषण का उद्देश्य होता है। यही वजह है कि व्यतिरेकी विश्लेषण का कार्य समकालीन दो भाषाओं के बीच ही किया जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के बीच अंतर के इस आधार के कारण जहाँ तुलनात्मक भाषाविज्ञान 'कालक्रमिक अध्ययन' कहलाता है वहीं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान 'समकालिक अध्ययन'।

4. अध्ययन-क्षेत्र के स्तर पर अंतर : तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी विश्लेषण

में अध्ययन-क्षेत्र के स्तर पर भी अंतर देखने को मिलता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का अध्ययन-क्षेत्र कुछेक ध्वनियों-रूपों जैसे मूल रूपों तक ही सीमित रहता है। इस आधार पर तुलनात्मक भाषाविज्ञान के रूपपरक तुलनात्मकता का पक्ष ही समाहित रहता है। वहीं व्यतिरेकी विश्लेषण में ध्वनि, व्याकरण, शब्द, अर्थ और वाक्य आदि भाषाओं के सभी अंगोपांगों तक ही नहीं अपितु संस्कृति आदि पक्ष तक भी परिव्याप्त होते हैं। इसलिए इसमें रूपपरक तुलनात्मकता के साथ-साथ संदर्भपरक तुलनात्मकता भी शामिल रहती है।

व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रक्रिया और विश्लेषक की स्थिति

व्यतिरेकी विश्लेषण पर विचार करते समय सर्वप्रथम हम यह सोच पाते हैं कि व्यतिरेकी विश्लेषक मूल रूप से भाषाविज्ञानी ही होता है। भाषाविज्ञानी का सीधा संबंध भाषाई संरचनाओं से होता है। वहीं लक्ष्य भाषा को सिखाने के संदर्भ में तथ्यों को उद्घाटित करना व्यतिरेकी विश्लेषण का लक्ष्य है। इसके लिए व्यतिरेकी विश्लेषण करने वाला भाषावैज्ञानिक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का वर्णनात्मक विवरण एवं इस विवरण की तुलना प्रस्तुत करने के लिए तुलनात्मक तकनीक रूपी साधन-उपकरण को व्यवहार में लाता है। दोनों भाषाओं संबंधी वर्णनात्मक विवरण एवं उसकी तुलना रूपी ये दोनों साधन और लक्ष्य दो अलग-अलग विज्ञानों से संबद्ध हैं। ये विज्ञान हैं -- भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान। इसके अतिरिक्त सीखने के परिप्रेक्ष्य में जो मानवीय व्यवहार का अंग है, कुछ निष्कर्ष निकालने का साहस कर बैठता है। भाषाविज्ञान का कार्य है कि भाषाई संरचना क्या है और मनोविज्ञानी का काम है कि संरचना कैसे प्रयुक्त होती है और कैसे सीखी जाती है।[१]

चूँकि व्यतिरेकी विश्लेषण में दो भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है, इसलिए इस हेतु दो भाषाओं का आधार ग्रहण किया जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण में उन कठिनाइयों-समस्याओं के बारे में पूर्वानुमान करने की प्रक्रिया को अपनाया जाता है जो किसी एक भाषा-भाषी व्यक्ति को अन्य भाषा सीखने में आती है। उनमें से यदि एक भाषा को हम स्रोत भाषा कहें और दूसरी को लक्ष्य भाषा तो इस परिप्रेक्ष्य में भी विद्वानों में यह मतभेद है कि क्या स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का सर्वांग व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाए या फिर उनके कुछेक अंशों को ही विश्लेषण का आधार बनाया जाए। इस संबंध में कमोबेश यही स्वीकार्य है कि भाषा का सर्वांग विश्लेषण न तो संभव है और न ही वांछनीय। चूँकि व्यतिरेकी विश्लेषण का सीधा संबंध शैक्षिक प्रयोजन या फिर अनुवाद आदि से होता है इसलिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के चुने हुए कुछेक अंशों का ही व्यतिरेकी विश्लेषण पर्याप्त रहता है।

वैसे यहाँ यह भी विचारणीय है कि व्यतिरेकी विश्लेषण के लिए दोनों भाषाओं में से किसे आधार माना जाए -- स्रोत भाषा को या फिर लक्ष्य भाषा को? यदि स्रोत भाषा को प्रमुखता दी जाती है तो उसके आधार पर व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय देखा जाना चाहिए कि लक्ष्य भाषा में क्या-क्या विषमताएँ हैं। वहीं, अगर लक्ष्य भाषा को प्राथमिकता दी जाती है तो व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय स्रोत भाषा की असमानताओं को देखा जाना चाहिए। कतिपय विद्वानों का मानना है कि व्यतिरेकी विश्लेषण का लक्ष्य, लक्ष्य भाषा के अध्ययन से संबंधित है, इसलिए स्रोत भाषा के आधार पर ही लक्ष्य भाषा का विश्लेषण किया जाना चाहिए, स्रोत भाषा को प्रमुखता दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी-भाषी को हिंदी सिखाने के लिए अंग्रेजी भाषा के संदर्भ में हिंदी का व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाना चाहिए।

व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रक्रिया मुख्य रूप से चार चरणों में संपन्न हो पाती है। ये चरण हैं -- (क) सामग्री संकलन, (ख) विवरणात्मक वर्णन, (ग) तुलना; और (घ) निष्पत्तियों (परिणामों) का प्रस्तुतीकरण।

(क) सामग्री संकलन : सबसे पहले व्यतिरेकी विश्लेषण से संबद्ध दोनों भाषाओं की सामग्री को एकत्रित किया जाता है ताकि उनका परस्पर व्यतिरेकी विश्लेषण किया जा सके। यह सामग्री मौखिक भी हो सकती है और लिखित भी। यदि शब्द, रूप-रचना, वाक्य-रचना और अर्थ के स्तर पर दोनों भाषाओं में विश्लेषण किया जाता है तो परंपरागत लेखन में उपलब्ध सामग्री को ही आधार बनाया जा सकता है। किंतु यदि उच्चारण तथा संधि के स्तर पर व्यतिरेकी विश्लेषण करना हो तो पूरी सामग्री (भले ही वह लिखित रूप में प्राप्त हो अथवा अलिखित अथवा बोली-रूप में), ध्वन्यात्मक लिपि में लिखी जानी चाहिए।

(ख) विवरणात्मक वर्णन : विवरणात्मक वर्णन, व्यतिरेकी विश्लेषण का दूसरा चरण है। इस चरण में एकत्रित सामग्री के आधार पर दोनों भाषाओं का विवरणात्मक वर्णन किया जाता है। इस वर्णन में ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि भाषा की विभिन्न व्याकरणिक इकाइयों का वर्गीकरण किया जाता है। इसमें यह आवश्यक है कि जिन दो भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाना हो, उन दोनों का मॉडल एक ही हो। यह विश्लेषण आवश्यकता के अनुसार ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ लेखन आदि में से किसी एक भाषिक पक्ष अथवा एकाधिक या फिर सभी भाषिक पक्षों पर किया जा सकता है। किंतु इतना तो अवश्यक ही है कि एक भाषा की संरचना की अन्य भाषा की तदनुरूपी संरचना से तुलना की जा सकती है। वहीं, व्यतिरेकी विश्लेषण के विषय में यह अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह विश्लेषण एककालिक (synchronic) हो।

(ग) **तुलना :** इसके पश्चात उपर्युक्त विश्लेषण से प्राप्त परिणामों की तुलना अपेक्षित होती है। इसलिए तीसरे चरण में दो भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण में तुलनात्मक तकनीक को अपनाया जाता है और अलग-अलग विवरण प्रस्तुत किए जाते हैं। इसके अंतर्गत, दो भाषाओं के ध्वनि, लिपि, पदबंध, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, वाक्य, वाक्य-साँचा, काल, पक्ष, वृत्ति, वचन, पुरुष एवं वाच्य, मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि ढाँचागत उपादानों को लेकर दोनों भाषाओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

कहने का आशय यह है कि व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार के लिए स्रोत और लक्ष्य भाषा का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण एवं दोनों विश्लेषणों की व्यवस्थित ढंग से तुलना आवश्यक है। इस विश्लेषण के अनुक्रम में सर्वप्रथम दोनों भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में भाषिक उपादान-विशेष का स्वरूप स्पष्ट किया जाता है ताकि दोनों भाषाओं के तुलनात्मक विश्लेषण से परिणामों को प्राप्त किया जा सके। इस विवेचन में कोरे सैद्धांतिक पक्ष को ही प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए, उपयुक्त उदाहरणों का उपयोग कर व्यवहार को सिद्धांत-प्रस्तुति का माध्यम बनाया जाना चाहिए। वैसे यहाँ यह संकेत कर देना भी अनुचित न होगा कि इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम दोनों भाषाओं की संरचना पर प्रकाश डालना अपेक्षित होता है। इसमें इन भाषाओं की प्रकृति और संरचनाओं की विशेषताओं को रेखांकित करने के साथ-साथ उनके ऐतिहासिक विकासक्रम के परिचय से विषय को समग्रता से समझना सरल हो जाता है। इस संबंध में प्रो. सूरजभान सिंह का कहना है कि ''किसी भी भाषा की प्रकृति, उसकी संरचना, शैली और सांस्कृतिक विशिष्टताओं को ठीक तरह से समझने के लिए उस भाषा की पृष्ठभूमि, उसके ऐतिहासिक विकासक्रम और उस पर पड़ने वाले देशी और विदेशी सभ्यताओं के प्रभावों को समझना जरूरी है।''[10]

(घ) **निष्पत्तियों (परिणामों) का प्रस्तुतीकरण :** व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रक्रिया के अंतिम चरण के अंतर्गत, दोनों भाषाओं की तुलना से प्राप्त निष्पत्तियों का प्रस्तुतीकरण शामिल है। इन निष्पत्तियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है -- समानताओं का वर्ग; और असमानताओं (व्यतिरेकी) का वर्ग।

समानताओं के वर्ग के अंतर्गत विश्लेषित दोनों भाषाओं की समानताओं से संबद्ध सामग्री होती हैं एवं असमानताओं के वर्ग में विश्लेषित दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण का परिणाम होता है। इन परिणामों के आधार पर भाषा-शिक्षक, अनुवादक, अनुवाद-प्रशिक्षु, कोशकार, शैली- विश्लेषक, वैयाकरण आदि अपने-अपने कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री तैयार कर सकते हैं।

कतिपय विद्वानों का यह भी मत है कि इस विश्लेषण के आधार पर सुधारात्मक प्रयास भी किए जाने चाहिए। उदाहरण के लिए, व्यतिरेकी विश्लेषण की निष्पत्तियों के

आधार पर भाषा-शिक्षण के लिए उपयोगी सामग्री तैयार की जानी चाहिए ताकि भाषा सीखने वाले व्याघात वाले बिंदुओं पर गलतियाँ न करें। इसी प्रकार, अनुवाद की दृष्टि से व्याघात बिंदुओं का पूर्वानुमान लगाने के पश्चात यह भी सुझाया जाना चाहिए कि व्याघात वाले इन बिंदुओं पर अनुवादक से क्या अपेक्षित है? उसे इनका कैसे अनुवाद करना चाहिए? आदि। किंतु, इस संदर्भ में यही व्यावहारिक है कि व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर सुधारात्मक प्रयास करते हुए सामग्रियाँ तैयार करना व्यतिरेकी विश्लेषण का कार्य नहीं है। व्यतिरेकी विश्लेषक को चाहिए कि वह विश्लेषित की जाने वाली दो या उससे अधिक भाषाओं में परिव्याप्त समानताओं और विषमताओं का विश्लेषण करते हुए परिणाम निकाले और अपनी निष्पत्तियाँ प्रस्तुत कर दे। भाषा-शिक्षक, अनुवादक, अनुवाद-प्रशिक्षु, कोशकार, शैली-विश्लेषक आदि उन निष्पत्तियों से अध्ययन-अध्यापन, अनुवाद और कोश निर्माण कार्य संबंधी प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार स्वयं उपयोग करेंगे।

व्यतिरेकी विश्लेषण के सामान्य सिद्धांत और इससे संबंधित प्रक्रिया व्यक्ति से दोनों भाषाओं के भाषाविद्, व्यतिरेकी विश्लेषक-भाषावैज्ञानिक और सिद्धहस्त अनुवादक की अपेक्षा रखता है। ऐसे में वह व्यक्ति भाषावैज्ञानिक, व्यतिरेकी विश्लेषक और अनुवादविद रूपी त्रिमूर्ति हो जाता है। दोनों भाषाओं के भाषिक उपादान-विशेष का स्वरूप स्पष्ट करने की दृष्टि के आलोक में व्यक्ति भाषाविद नजर आता है। वहीं व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय दोनों भाषाओं के भाषिक उपादानों के बीच जब लेखक तुलना एवं व्यतिरेकी विश्लेषण करता है तब वह विश्लेषक की भूमिका निभाता नजर आता है और इस विश्लेषण के दौरान अपने विश्लेषण के पक्ष में उदाहरणों को व्यवहार में लाते समय वह अनुवाद-व्यवहार की भावभूमि पर निसृत अनुवाद-सिद्धांत का उद्‌घोषक प्रतीत होता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद की परस्पर निर्भरता

प्रत्येक भाषा में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य रहती है, भाषा के नियमों में भिन्नता होती है। यह भिन्नता ही व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद का आधार है। व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद का संबंध दो भाषाओं से होता है। इनमें से एक स्रोत भाषा कहलाती है और दूसरी लक्ष्य भाषा। अनुवाद-कार्य के दौरान स्रोत भाषा में कही गई बात को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित किया जाता है, वहीं व्यतिरेकी विश्लेषण में स्रोत भाषा की संरचना का लक्ष्य भाषा की संरचना के साथ तुलनात्मक अध्ययन/व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है। इसलिए दोनों भाषाओं के विश्लेषण में भाषाविज्ञान से संबंधित जो प्रणाली अपनाई जाती है वह दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण और उनमें परस्पर अनुवाद, दोनों पर लागू हो सकती है। स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा की ओर उन्मुख होने के कारण अनुवाद एक दिशात्मक (uni-directional) है। वहीं स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा, दोनों की ओर परस्पर

उन्मुखी होने के कारण व्यतिरेकी विश्लेषण द्वि-दिशात्मक (bi-directional) है।

व्यतिरेकी विश्लेषण का संबंध, व्यतिरेकी भाषाविज्ञान से है। व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, अनुवाद सिद्धांत को अपने में समाहित किए हुए है। व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद, दोनों का संबंध कम से कम दो भाषाओं से है। व्यतिरेकी विश्लेषण में अनुवाद का उपयोग वहाँ तक तो अवश्य ही होता है जहाँ वह दोनों भाषाओं का आँकड़ा प्रस्तुत करता है। व्यतिरेकी विश्लेषण की भाँति अनुवाद में भी कम से कम दो भाषाओं की तुलना का भाव समाविष्ट होता है। भाषा तुलना के सिद्धांतों एवं विधियों के साथ अनुवाद के सिद्धांतों का सीधा संबंध व्यतिरेकी भाषाविज्ञान से स्थापित किया जा सकता है। हैलिडे, मैकिन्तोश और स्ट्रेविन्स के शब्दों में कहें तो -- ''चूँकि दो भिन्न भाषाओं के क्रियाकलाप (कालक्रमिकता के विपरीत समकालीनता के संदर्भ में) की तुलना के सिद्धांत व विधियाँ व्यतिरेकी भाषाविज्ञान के नाम से जाने जाते हैं, और चूँकि अनुवाद को ऐसी तुलना का एक प्रकार माना जा सकता है अतः व्यतिरेकी भाषाविज्ञान अनुवाद सिद्धांत को भी अपने में सम्मिलित कर लेता है।''[11]

व्यतिरेकी विश्लेषण पद्धति का सर्वप्रथम उपयोग भाषा-शिक्षण के संदर्भ में किया गया जिसमें अन्य भाषा को सीखने वाले को उसकी मातृभाषा एवं लक्ष्य भाषा के बीच परिव्याप्त समान एवं असमान तत्वों से अवगत कराना निहित रहा या फिर इस विश्लेषण के आधार पर शिक्षण सामग्री निर्मित की गई। इस दृष्टि से भाषा शिक्षण के क्षेत्र में व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रमुख योगदान रहा। किंतु यदि हम व्यतिरेकी विश्लेषण सिद्धांत को भाषा-शिक्षण के अतिरिक्त अनुवाद आदि के संदर्भ में भी देखते हैं तो यह पाते हैं कि इन दोनों क्षेत्रों में व्यतिरेकी विश्लेषण के उपयोग की पद्धति में कुछ अंतर भले ही हो किंतु प्रासंगिकता निर्विवाद है। वैसे भी यदि दूसरी भाषा-शिक्षण को विस्तृत रूप प्रदान किया जाए तो यह एक प्रकार से अनुवाद सीखना ही है क्योंकि भाषा-शिक्षण के अंतर्गत विद्यार्थी यदि अन्य भाषा सीख रहा होता है तो इस शिक्षण-प्रक्रिया के दौरान वह मातृभाषा और लक्ष्य भाषा के नियमों में परस्पर भेद करना ही सीखता है। व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में व्यावहारिक स्तर पर विद्यमान मातृभाषा (अथवा प्रथम भाषा) के संरचनात्मक ढाँचे का उपयोग अनुवाद करते हुए दूसरी भाषा सीखने में करता है। वह अपने मन-मस्तिष्क पर क्रमशः लक्ष्य भाषा के नियमों का व्याकरण बना लेता है। वह शब्दावली के पर्याय खोजकर याद करता है और भाषा के संरचागत नियमों का सतर्कता से पालन करते हुए वाक्य रचना करता है। धीरे-धीरे पारंगत होते चलने पर उसकी वाक्य-संरचना में सहजता और निर्बाधता आनी शुरू हो जाती है और अन्य भाषा के निरंतर व्यवहार से उसमें उस भाषा-विशेष में चिंतन-मनन करने की प्रवृत्ति तक पनप

जाती है। अनुवाद के माध्यम से अन्य भाषा-शिक्षण की यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है। प्रसिद्ध अनुवादशास्त्री थियोडोर सेवरी का यह कहना है कि ''यूरोप में प्राचीन क्लासिकल साहित्य (ग्रीक लैटिन रचनाकार -- सिसरो, सैलस्ट सीजर, वर्जिल, ओविड, होरेस सुसेनका आदि) आदि अनुवाद के माध्यम से भी पढ़ाया जाता था और अब भी पढ़ाया जाता है। जर्मन आदि भाषाएँ भी अनुवाद के माध्यम से सिखाई जाती हैं।'' अस्तु, अन्य भाषा-शिक्षण में भाषा सीखने की प्रक्रिया के दौरान अनुवाद की प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है।

अनुवादक एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में समतुल्य प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रयास करता है। यह समतुल्यता दोनों भाषाओं में स्वयं में तुलनीयता को स्थापित करती है। अनुवाद कार्य करते समय अनुवादक के समक्ष स्रोत भाषा के किसी कथन अथवा कथन के अलग-अलग भागों के लक्ष्य भाषा में कमोबेश एक से अधिक विकल्प होते हैं जिनमें से वह सटीक समतुल्य विकल्प चयनित करता है। अनुवाद में निहित विकल्प-चयन की इस प्रक्रिया में परोक्ष रूप से व्यतिरेकी विश्लेषण का ही सहारा लिया जाता है। यही कारण है कि व्यतिरेकी विश्लेषण को अनुवाद का आनुषंगिक साधन तक माना जाता है।

प्रत्येक भाषा में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य परिव्याप्त रहती है। यह भिन्नता भाषा संबंधी नियमों में व्याघात उत्पन्न करती है। दो भाषाओं में असमानता और अर्ध-समानता से उत्पन्न व्याघात की स्थिति को दूर करने के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण की सहायता ली जाती है। व्यतिरेकी विश्लेषण प्रणाली में एक भाषा की संरचना और उसके द्वारा व्यक्त किए जाने वाले अर्थों का दूसरी भाषा के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। लिंग, वचन, कारक, काल, वृत्ति, पक्ष आदि व्याकरणिक कोटियों, संज्ञा पदबंध, क्रियापदबंध, क्रियाविशेषण पदबंध आदि पदबंधों, सरल, संयुक्त, मिश्र आदि वाक्यों के प्रकारों एवं शब्दों के विभिन्न अर्थमूलक प्रवर्ग भाषा के प्रमुख संरचनात्मक तत्व हैं। इनमें से रूप, वाक्य और शब्द भाषा के सार्थक तत्व हैं। रूप और वाक्य, भाषा की व्याकरणिक संरचना का अंग होते हैं और शब्द पदार्थ-बोध का साधन। व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय स्रोत भाषा के तत्वों के लक्ष्य भाषा में पर्याय ढूँढ़े जाते हैं। ये पर्याय अनुवाद के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। इस तरह अनुवाद की सहायता से दोनों भाषाओं के नियमों का अध्ययन किया जाता है। इस आधार पर अनुवाद को व्यतिरेकी विश्लेषण का आनुषंगिक साधन माना जा सकता है। इस संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि दो भाषाओं में समानता और असमानता के क्षेत्रों का निर्धारण करने में अनुवाद का व्यतिरेकी विश्लेषण में विशेष योगदान रहता है। उपर्युक्त विवेचन से यही बोध होता है कि अनुवाद के बिना किया जाने वाला व्यतिरेकी विश्लेषण रूप की रूप के साथ तुलना करने की वजह से केवल रूपवादी विश्लेषण होगा जिसमें अर्थ पक्ष गौण रह जाता है। इसलिए व्यतिरेकी

विश्लेषण प्रक्रिया अनुवाद के बिना संभव नहीं है।

व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद के परस्पर निर्भरता संबंधी उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यही कहा जा सकता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद प्रक्रिया में दो भाषाओं का समावेश होता है। व्यतिरेकी विश्लेषण में जहाँ अनुवाद का उपयोग किया जाता है वहीं व्यतिरेकी विश्लेषण से प्राप्त परिणामों (निष्पत्तियों) से अनुवाद प्रक्रिया में लाभ उठाया जाता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण के स्तर और अनुवाद

व्यतिरेकी विश्लेषण के अंतर्गत दो भाषाओं के ध्वनि, लिपि, पदबंध, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-विशेषण, वाक्य, वाक्य-साँचा, काल, पक्ष, वृत्ति, वचन, पुरुष एवं वाच्य, मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि ढाँचागत सभी उपादानों को लेकर दो भाषाओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। दो भाषाओं के इन उपादानों की तुलना करते हैं तब तीन तुलनीय स्थितियाँ उभर सकती हैं। ये हैं -- समान, अर्ध-समान; और असमान।

समानता के धरातल पर अंग्रेजी और हिंदी में सर्वनाम एवं विशेषण की संरचना प्रायः एक है। उदाहरण के तौर पर अंग्रेजी में My mother, My father, Handsome boy, और Beautiful girl की भाँति हिंदी में भी 'मेरी माँ/माता', 'मेरे पिता', 'सुंदर लड़का' और 'सुंदर लड़की' संरचना एकसमान मिलती है।

अर्ध-समानता की स्थिति में मुख्य अर्थ अथवा कहा जाए कि अभिधार्थ (literal meaning) के स्तर पर सामान्य रूप से अनेक शब्दों में समानता दिखाई देती है। मुख्य अर्थ के स्तर पर समानता किंतु विस्तार अर्थ (expanded meaning) के स्तर पर दोनों में समानता न होना ही वस्तुतः अर्ध-समानता की स्थिति है।

किंतु **असमानता** के धरातल पर कुछ संरचना दोनों भाषाओं में अपना-अपना रूप लिए होती हैं। दो भाषाओं के कुछ घटक पूरी तरह से असमान होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दो भाषाओं में से किसी एक भाषा में उनका पूरी तरह से अभाव होता है। यह असमानता ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि के स्तर पर परिलक्षित की जा सकती है। उदाहरण के लिए कर्तृवाच्य संरचना हिंदी भाषा का वैशिष्ट्य है जबकि कर्मवाच्य संरचना अंग्रेजी भाषा का वैशिष्ट्य। इस वैशिष्ट्य को इन दोनों भाषाओं से लिए गए उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे, अंग्रेजी का एक वाक्य है -- The meeting was presided by the Vice Chancellor of the University. अगर इस वाक्य में निहित तथ्य को हिंदी में प्रस्तुत किया जाए (या कहा जाए कि अनुवाद किया जाए) तो वह कदाचित इस प्रकार है -- ''बैठक की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय द्वारा

की गई।'' जबकि हिंदी भाषा की कर्तृवाच्य संरचना के आधार पर 'बैठक की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय ने की।' कहा/लिखा जाए तो वह हिंदी भाषा-भाषियों के लिए सहज रूप से स्वीकार्य होगा। इस तरह का भाषिक वैशिष्ट्य (और अन्य भाषा के संदर्भ में असमानताएँ) कमोबेश प्रत्येक भाषा में मिलती हैं।

दो भाषाओं के बीच इस प्रकार की असमानताओं को तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर विवेचित कर इनका स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है। भाषाओं की इन असमानताओं को हम जहाँ ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि के स्तर पर देख सकते हैं, वहीं इन्हें अर्थ और संदर्भ के आलोक में भी देखा जा सकता है। इस प्रकार, अनुवाद तुलनीयता को मुख्य रूप से तीन संदर्भों में देखा जा सकता है। ये हैं -- रूपपरक (formal) तुलनीयता, अर्थपरक (semantic) तुलनीयता; और संदर्भपरक (contextual) तुलनात्मकता। इनके आलोक में दो भाषाओं के बीच विद्यमान तुलनीय अनुवाद योग्यता अर्थात अनुवाद्यता की कसौटी पर निर्भर रहती है।

1. **रूपपरक तुलनीयता :** रूपपरक तुलनीयता में ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि भाषाई इकाइयों के संदर्भ में दो भाषाओं में अनुवाद्यता स्थापित की जाती है। यह तुलना दो भाषाओं के केवल शब्दों के रूप-साम्य के आधार पर की जाती है, अर्थ के आधार पर नहीं। इस तरह कहा जा सकता है कि रूपपरक तुलनात्मक एक प्रकार से भाषाई तत्वों का अंतरण है जिसे अंतरित तुलना भी कहा जाता है।

दो भाषाओं में **ध्वनियों** का व्यतिरेक प्रायः संज्ञा शब्दों और विशेष रूप से व्यक्तिवाचक नामों के संदर्भ में ज्यादातर देखने में आता है। यह व्यतिरेक अनुवादक के सामने समस्या उत्पन्न करता है। यह समस्या उस समय और भी गंभीर हो जाती है जब अनुवादक दुभाषिए का काम कर रहा होता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के एक साहित्यकार के नाम की वर्तनी है -- Baodrillard। किंतु उच्चारण के स्तर पर अनुवादक के लिए यह समस्या बन जाती है कि इस नाम की वर्तनी 'बौड्रिलार्ड' लिखे अथवा कुछ और। जबकि इसकी सही वर्तनी है -- 'बौद्रीआँ'। बंगला में प्रणव मुखर्जी नाम को बंगला में 'प्रनबो मुखर्जी' के रूप में उच्चारित किया जाता है किंतु हिंदी में 'प्रणव मुखर्जी' ही लिखा और बोला जाता है। इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण हैं -- Borges (बोर्खेस), Rimband (राइमबो), Francois (फ्राँसुआ), Don Quixote (डॉन किहोटे)। भारतीय जनमानस के लिए resturant (रेस्तराँ), और विशेष तौर पर दिल्ली के धौला कुआँ क्षेत्र के आसपास रहने/आने-जाने वालों के लिए Benito Juharez (बेनितो हुआरेज मार्ग) इसी प्रकार के कुछ प्रचलित उदाहरण हैं।

शब्दों के स्तर पर भी भाषाओं में कई प्रकार के रूपात्मक व्यतिरेक मिलते हैं।

हालाँकि यहाँ यह संकेत करना भी अनुचित न होगा कि प्रत्येक शब्द अर्थ से जुड़ा होता है इस कारण शब्द के स्तर पर व्यतिरेकी विश्लेषण के अर्थ की बात कहीं न कहीं अनिवार्य रूप से आ ही जाती है। इसके बावजूद, अर्थ की दृष्टि से व्यतिरेकी विश्लेषण पर अलग से विचार करना उपयुक्त रहेगा। जहाँ तक शब्दों का संबंध है, भाषा में शब्दों का वर्गीकरण उनके कार्य के आधार पर होता है। अंग्रेजी के शब्दों के इस वर्गीकरण को 'parts of speech' कहा जाता है। अंग्रेजी में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, योजक, निपात और विस्मयादिबोधक शब्द होते हैं। हिंदी में इनके आठ प्रकार हैं। अंग्रेजी में एक अतिरिक्त प्रकार का शब्द भी होता है जिसे 'आर्टिकल' (article) कहा जाता है। शब्द-भेदों के अंतर्गत आर्टिकल्स को विशेषण के अंतर्गत रखा जा सकता है।

शब्द के स्तर पर परिव्याप्त व्यतिरेकों को कमोबेश सभी शब्द-भेदों के आधार पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के मध्यम पुरुष सर्वनाम के रूप में केवल 'you' सर्वनाम है जबकि हिंदी में मध्यम पुरुष 'तू', 'तुम', और 'आप' -- तीन प्रचलित रूपों में है। 'तू' जहाँ अत्यंत निकटता अथवा तीव्र अनादर की स्थिति का द्योतक है तो 'तुम' अनौपचारिक संबोधन/संबंध का, जबकि 'आप' सर्वनाम औपचारिक संदर्भ में प्रयुक्त होता है। इसी तरह, अंग्रेजी में शब्द-रचना के आधार पर क्रिया के 'स्ट्रांग' और 'वीक' भेद किए जाते हैं (जैसे -- 'go, went, gone')। जबकि हिंदी में क्रिया की रूपावली में भिन्नता लगभग गौण होने के कारण इस प्रकार का भेद नहीं है। हिंदी में क्रिया के दो ही रूप हैं (जैसे -- 'गाता' और 'गा')। इसी प्रकार, अंग्रेजी में विशेषण के तीन रूप हैं -- 'good, better, best'। जबकि हिंदी में ऐसी व्यवस्था नहीं है। इनकी अभिव्यक्ति के लिए हिंदी में अलग से शब्दों को जोड़ना पड़ता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के निम्नलिखित वाक्यों में प्रयुक्त good, better और best शब्दों को देखिए और उनके हिंदी अनुवादों में प्रयुक्त 'अच्छा/अच्छी', 'की तुलना में अच्छा/अच्छी', और 'सबसे अच्छा/अच्छी' शब्दों को देखा जा सकता है :

- Ashna has good record in studies.
  (आशना पढ़ाई में अच्छी है।)
- Aradhya's record in studies is better than Ashna.
  (आराध्य पढ़ाई में आशना की तुलना में अच्छी है।)
- Namya has the best record in studies in the class.
  (नम्या पढ़ाई में पूरी कक्षा में सबसे अच्छी है।)

शब्द के स्तर पर व्यतिरेकी बिंदुओं को समान शब्दावली के अभाव के रूप में देखा जा सकता है। हालाँकि यह सही है कि प्रत्येक भाषा की शब्दावली भिन्न होती

है और उस शब्दावली के अर्थ के स्तर पर भी भिन्नता होती है। साथ ही, शब्दावली के प्रयोग की स्थितियों में भी भिन्नता व्याप्त होती है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि भिन्न परिस्थिति और भिन्न अर्थ को अन्य भाषा में उसी रूप में व्यक्त करने के लिए कोई शब्द हो ही। उदाहरण के लिए, हिंदी के शब्द 'लोटा' को लिया जा सकता है। अंग्रेजी भाषा में इस पात्र के लिए कोई शब्द नहीं है। हालाँकि शब्द की प्रयोगधर्मिता के आधार पर इससे मिलते-जुलते शब्द 'jug, mug, pot' मिलते हैं, किंतु ये 'लोटा' नहीं है। इसी को अगर दूसरे कोण से देखा जाए तो यही समस्या अंग्रेजी के 'jug, mug, pot' शब्दों के लिए हिंदी में समतुल्य शब्द के अभाव की है।

शब्दों के स्तर पर भी भाषाओं में व्यतिरेक वहाँ स्पष्ट रूप से नजर आता है जहाँ एक भाषा (स्रोत भाषा) में तो शब्द हो किंतु उसका सटीक पर्याय दूसरी भाषा में हो ही नहीं। 'थाली', 'हांडी', 'कचौड़ी', 'कुल्हड़', 'पत्तल', 'रायता', 'घी', 'पान', 'इलायची', 'सौंठ', 'पूरी', 'कलछुली' आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। अगर कहीं 'पूरी' शब्द आता है तो उसका अंग्रेजी में सटीक पर्याय उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार के व्यतिरेक का समाधान करते हुए अनुवादक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने की दृष्टि से शब्द को घुमा-फिराकर अनुवाद कुछ इस प्रकार प्रस्तुत कर दे कि -- 'fried flour cake'। या फिर उस शब्द को अपनी भाषा में ग्रहण करते हुए लिप्यंतरित कर 'Puries' लिख दे और साथ ही टिप्पणी देते हुए यह लिख दे कि यह घी/तेल में तली हुई आटे की छोटी रोटी होती है -- 'a kind of wheat cake fried in ghee/oil.'। इसी प्रकार 'हुक्का' शब्द के लिए 'Indeginous Pipe', 'Earthern Pipe' या फिर लिप्यंतरण कर देने का उल्लेख किया जा सकता है।

शब्द के स्तर पर ही देखा जाए तो शब्द में शब्द-संयोग की भी परिव्याप्ति रहती है। इसे 'सह-प्रयोग' कहते हैं, जिसका अभिप्राय है -- शब्दों के साथ-साथ रहने की प्रवृत्ति। सह-प्रयोग में भी व्यतिरेक मिलता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'जलपान' शब्द का प्रयोग 'नाश्ता' के अर्थ में होता है। लेकिन इस अर्थ में 'जल' के अन्य हिंदी पर्याय (पानी, नीर, वारि) 'पान' के साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। सह-प्रयोग संबंधी एक अन्य उदाहरण के रूप में 'भोजन' और 'खाना' शब्दों को लिया जा सकता है। ये शब्द एक-दूसरे के पर्याय हैं। हिंदी में 'खाना खाना' सह-प्रयोग तो होता है लेकिन 'भोजन खाना' जैसा प्रयोग व्यवहृत नहीं होता। भोजन के साथ 'करना' क्रिया का प्रयोग किया जाता है -- 'भोजन करना'। इसी प्रकार, अंग्रेजी में भले ही यह कह दिया जाए कि 'to play a radio' परंतु हिंदी में 'रेडियो बजाना' ही कहा जाएगा। सह-प्रयोग की दृष्टि से 'Light the Lamp' 'बत्ती प्रकाशित करो' न होकर 'बत्ती जलाओ' ही है। इसी तरह,

अंग्रेजी में ‘to take tea’, ‘to take food’, ‘to take medicine’ आदि भी सह-प्रयोग के उदाहरण हैं। किंतु हिंदी में इनके लिए क्रमशः ‘चाय पीना’, ‘भोजन करना’, ‘दवा खाना/पीना’ सह-प्रयोग हैं। हिंदी में ‘पीना’ क्रिया के आधार पर अंग्रेजी की ‘drink’ क्रिया का इस्तेमाल होना चाहिए था। जबकि अंग्रेजी भाषा में ‘tea’ के साथ ‘drink’ क्रिया का प्रयोग नहीं होता। इसी तरह से ‘food’ या ‘medicine’ के साथ ‘eat’ क्रिया का प्रयोग नहीं होता। हालाँकि ऐसे व्यतिरेकों में अनुवाद की वजह से कभी-कभी नए सह-प्रयोग लक्ष्य भाषा में देखे जा सकते हैं। ‘to take tea’ के लिए ‘चाय पीना’ के स्थान पर ‘चाय लेना’ जैसे नए सह-प्रयोग लक्ष्य भाषा (हिंदी) में न केवल प्रवेश कर चुके हैं बल्कि स्थान भी पा चुके हैं।

भाषिक मुहावरों-लोकोक्तियों और सूक्तियों आदि के व्यतिरेकों का भी इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि अन्य भाषा में समतुल्य मुहावरे-लोकोक्तियाँ और सूक्तियाँ आदि हो हीं। इसलिए इनके सही अर्थ को जाने बिना अन्य भाषा शिक्षण और अनुवाद में कठिनाई होती है।

अंग्रेजी भाषा में आर्टिकल्स का प्रयोग देखने को मिलता है। अंग्रेजी के आर्टिकल्स की संकल्पना के समतुल्य हिंदी भाषा में संकल्पना नहीं है। इसलिए आर्टिकल्स के प्रयोग में भी व्यतिरेक नजर आ जाता है। ‘a’, ‘an’ और ‘the’ के रूप में अंग्रेजी के आर्टिकल्स होते हैं, जो अपनी प्रकृति में दो प्रकार के हैं -- ‘निश्चयवाचक’ (definite) और ‘अनिश्चयवाचक’ (Indefinite)। ‘a’ और ‘an’ ‘अनिश्चयवाचक’ के रूप में व्यवहृत होते हैं जबकि ‘the’ और ‘an’ ‘निश्चयवाचक’ के रूप में। हिंदी में ‘a’ और ‘an’ का अनुवाद कभी तो ‘एक’ होता है और कभी नहीं भी होता। उदाहरण के लिए,

- The Boy is sick.
  लड़का बीमार है।
- A Vice-chancellor is basically a teacher.
  कुलपति मूलतः एक अध्यापक होता है।
- United States of America is an affluent country.
  संयुक्त राज्य अमेरिका धनी देश है।
- The United States of America is an affluent country.
  संयुक्त राज्य अमेरिका एक धनी देश है।
- Mr. Atal Bihari Bajpai is a good orator and statesman.
  श्री अटल बिहारी वाजपेयी अच्छे वक्ता और राजनीतिज्ञ हैं।

‘The’ आर्टिकल का अनुवाद ‘वह’ होता है। उदाहरण के लिए,

- The girl who had come here is my sister.

वह लड़की जो यहाँ आई थी मेरी बहन है।

'The' आर्टिकल के अनुवाद 'वह' का तिर्यक रूप 'उस' होता है। उदाहरण के लिए, 'There was a king. The king had a beautiful daughter.' वाक्य के अनुवाद 'एक राजा था। उस राजा की एक सुंदर बेटी थी।' में 'उस' शब्द के प्रयोग को देखा जा सकता है।

वैसे, बिना आर्टिकल के संज्ञा शब्द के अनुवाद में कभी-कभी 'होना' मुख्य क्रिया के रूप में लाकर अनुवाद पूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, 'The dog is white' का अनुवाद -- 'कुत्ता सफेद है।'

वाक्य रचना के स्तर पर भी व्यतिरेक मिलता है। व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्य किसी भाषा की सबसे बड़ी इकाई माना जाता है। शब्द अपना अर्थ-ग्रहण वाक्य से ही करते हैं। शब्द/पद, पदबंध और उपवाक्य रूपी इकाइयाँ वाक्य के खंड हैं। किंतु संसार की समस्त भाषाओं की संरचना-व्यवस्था में समानता नहीं होती। विभिन्न भाषाओं के वाक्यों की संरचना विभिन्न ढंग से होती है। व्यतिरेकी विश्लेषण से वाक्य संरचना में व्याप्त व्याघात का पता चल पाता है। उदाहरण के लिए, व्यतिरेकी विश्लेषण से हम इस नतीजे पर आसानी से पहुँच सकते हैं कि अंग्रेजी के जटिल वाक्य का अनुवाद हिंदी में भी जटिल वाक्य के रूप में किया जाना जरूरी नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि वाक्य विन्यास लक्ष्य भाषा के स्वभाव और संरचना के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए वाक्य रचना के स्तर पर पदक्रम, अन्वय, लिंग तथा वचन आदि भाषाई इकाइयों का जो व्यतिरेक मिलता है उस पर ध्यान देना जरूरी है। व्यतिरेकी विश्लेषण करके यह जाना जा सकता है कि शब्दक्रम परिवर्तन कैसी गड़बड़ी कर सकता है। जैसे 'garden flower' 'बगीचे का फूल' है और 'flower garden' 'फूलों का बगीचा'। या फिर 'race horse' 'घुड़दौड़ का घोड़ा' है और 'horse race' 'घुड़दौड़'। इसी प्रकार, निम्नलिखित वाक्य और उनका हिंदी अनुवाद देखिए।

'The five best articles' -- पाँच सर्वोत्तम लेख।

'The best five articles' -- सबसे अच्छे लेखों में से सर्वोत्तम पाँच लेख।

इस तरह कहा जा सकता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण से यह ज्ञात हो पाता है कि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में वाक्य-व्यवस्था में कर्ता और क्रिया की अन्विति क्या है, विभिन्न उपवाक्य एक-दूसरे से किस तरह और कहाँ जुड़ रहे हैं।

2. अर्थपरक तुलनीयता : जब दो भाषाओं के शब्दों के बीच तुलना अर्थ के आधार पर हो तो वह अर्थपरक (semantic) तुलनीयता कहलाती है। अर्थपरक तुलनीयता के शब्दों में अर्थ के स्तर पर अंतर होता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के handsome और beautiful शब्दों के अर्थ के आधार पर हिंदी में इन दोनों शब्दों का समतुल्य शब्द

'सुंदर' है। वहीं दूसरी ओर, अंग्रेजी के uncle शब्द के अर्थ के आधार पर हिंदी में 'चाचा', 'मामा', मौसा', फूफा' शब्द। ये स्थितियाँ भाषाओं में अतिभेदकता और 'अल्पभेदकता' को दर्शाती हैं।

यदि स्रोत भाषा के किसी एक शब्द/कोटि के संपूर्ण अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए लक्ष्य भाषा में दो अथवा दो से अधिक समानार्थी शब्दों के प्रयोग को 'अतिभेदकता' (over-differentiation) कहते हैं। इस अतिभेदकता को 'अतिकोटिकरण' भी कहते हैं। उदाहरण के लिए, स्रोत भाषा हिंदी के 'शोक' शब्द के लिए लक्ष्य भाषा अंग्रेजी में 'condolence', 'sorrow', 'mourn', 'grief', 'bereavement' एवं 'sad' समानार्थी शब्द हैं। इन शब्दों की उपलब्धता अतिभेदकता की स्थिति है।

वहीं दूसरी ओर, यदि स्रोत भाषा के किसी शब्द/कोटि के एक से अधिक अर्थों को व्यक्त करने के लिए लक्ष्य भाषा में एक ही समानार्थी शब्द का विधान हो तो वह 'अल्पभेदकता' (under-differntiation) कहलाता है। इस अल्पभेदकता को 'अल्पकोटिकरण' भी कहते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी में 'snow' एवं 'ice' शब्द के समतुल्य हिंदी में केवल 'बर्फ' शब्द की उपलब्धता अतिभेदकता की स्थिति है। 'बर्फ' शब्द के प्रयोग की समस्या उस समय और भी विकट नजर आती है जब हम आइसलैंडिक भाषा के संदर्भ में इस पर विचार करें। आइसलैंडिक भाषा में गिरती बर्फ के लिए एक शब्द है तो जमीन पर गिरी बर्फ के लिए दूसरा शब्द, गिरकर जमती बर्फ के लिए तीसरा शब्द है तो गिरकर जमी बर्फ के लिए चौथा शब्द और फिर जमने के बाद पिघलती बर्फ के लिए पाँचवाँ शब्द है। बर्फ का इस प्रकार और अधिक विभाजन-उपविभाजन उस भाषा में नजर आता है। इसी प्रकार का एक अन्य प्रचलित उदाहरण है -- अंग्रेजी के 'lunch' और 'dinner' शब्दों के लिए हिंदी में केवल एक ही शब्द की उपलब्धता -- 'भोजन'।

3. संदर्भपरक तुलनीयता : प्रत्येक भाषा की भाषाई-व्यवस्था के भीतर सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ भी समाहित रहते हैं। ये सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ जहाँ भाषा-समाज विशेष का अपना वैशिष्ट्य लिए होते हैं वहीं अन्य भाषा के परिप्रेक्ष्य में असमानता की स्थिति पैदा कर देते हैं। इसलिए दो भाषाओं के बीच विद्यमान तुलनात्मकता केवल रूपपरक तुलनात्मकता तक ही सीमित न रहकर संदर्भपरक भी होती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के 'anniversary' शब्द को लिया जा सकता है। अगर यह शब्द विवाह के संदर्भ में आता है (wedding aniversary) तो इसका सीधा-सा अनुवाद 'वर्षगांठ' (विवाह की वर्षगाँठ) किया जाएगा। किंतु यदि यही शब्द 'birth anniversary of Budha' के रूप में आता है तो यहाँ 'बौद्ध जयंती' अनुवाद किया जाएगा। इसका कारण यह है कि हिंदी में अत्यंत विशिष्ट व्यक्तियों की 'वर्षगाँठ' के पर्याय के रूप में 'जयंती' शब्द व्यवहृत किया जाता है। जैसे 'गांधी जयंती', 'अम्बेडकर जयंती', 'नानक जयंती', 'महावीर जयंती'

आदि। वहीं, अगर यह 'anniversary' शब्द मृत्यु के संदर्भ में आए (death anniversary) तो वहाँ यह 'वर्षगाँठ' नहीं है क्योंकि वर्षगाँठ तो एक खुशी का आयोजन होता है, जबकि मृत्यु एक शोकपूर्ण घटना है। इस शोकपूर्ण घटना की 'anniversary' 'वर्षगाँठ' न होकर 'बरसी' के रूप में मनाई जाती है, जिसे 'पुण्य तिथि' भी कहा जाता है। इस तरह, भाषा-समाज की संस्कृति के अलग-अलग संदर्भों में अंग्रेजी के एक ही शब्द के लिए अलग-अलग शब्द प्रयुक्त होते देखे जा सकते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजी साहित्य-संस्कृति में प्रयुक्त होने वाले 'Good Friday' शब्द को भी देखा जा सकता है, जो हिंदी में अनूदित होकर 'शुभ शुक्रवार' नहीं हो सकता क्योंकि 'Good Friday' वाले दिन प्रभु ईसा मसीह को क्रूस पर लटकाया गया था। इसलिए वह 'पुण्य तिथि' है।

भाषा के सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ को अंग्रेजी की अभिवादन व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी की अभिवादन व्यवस्था से संबंधित पद 'Good morning', 'Good afternoon', 'Good evening', 'Good night', 'Good day' लिया जा सकता है। दो व्यक्तियों के आपस में मिलने पर अपनी बातचीत अथवा आचरण के आरंभ में इस प्रकार के अभिवादन को व्यवहार में लिया जाता है, किंतु ये अभिव्यक्तियाँ समय-सापेक्ष हैं। अर्थात् प्रयोग के संदर्भ में इसका व्यवहार प्रातःकाल, दोपहर, शाम अथवा रात को किया जाता है। इसी प्रकार, विदा होते समय 'Good bye' कहना भी उल्लेखनीय है। अंग्रेजी भाषा या समाज की अभिवादन-व्यवस्था का यह अपना वैशिष्ट्य है। किंतु इसका हिंदी रूपांतरण करते समय कठिनाई होगी क्योंकि हिंदी भाषा या समाज के संस्कार में अभिवादन व्यवस्था समय से संबद्ध न होकर सामाजिक स्तर-भेद के साथ जुड़ी हुई है। समान आयु वर्ग के लोगों को 'नमस्ते', 'नमस्कार', 'राम-राम' तथा बड़ों को 'प्रणाम' या 'पाय लागे' एवं छोटों को अभिवादन के संदर्भ में बड़े आशीर्वाद देते हुए 'खुश रहो', 'चिरंजीव भव' कहते हैं। अपवादस्वरूप 'Good morning' के लिए 'शुभ प्रभात' और 'Good night' के लिए 'शुभ रात्रि' किया गया शाब्दिक अनुवाद भले ही शाब्दिक दृष्टि से ठीक हो, किंतु इसे हिंदी भाषा की सांस्कृतिक विशिष्टता के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। इसलिए अंग्रेजी की 'Good morning' जैसी संरचनाओं के संदर्भों में उसका समांतर प्रयोग 'नमस्ते' या 'नमस्कार' ही संदर्भ-युक्त है।

प्रत्येक भाषा में समाहित सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को एक अन्य आयाम से भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी पद 'Father', 'Mother', 'Sister' को लिया जा सकता है जिनके क्रमशः हिंदी समतुल्य शब्द हैं -- 'पिता', 'माता', 'बहन'। किंतु यदि यह कहा जाए कि 'Mother Tersa' तो क्या उसकी हिंदी समतुल्य प्रस्तुति 'माता/माँ टेरेसा' के रूप में होगी? सामान्य हिंदी भाषी व्यक्ति के लिए यह संप्रेषणीय नहीं है। इसलिए इसका लिप्यंतरण 'मदर टेरेसा' ही किया जाएगा। इसी प्रकार 'Father'

पद से संबोधित किए जाने वाले किसी भी चर्च के पादरी को 'पिता' न कहकर 'फादर' ही कहा जाएगा। और अस्पताल में काम करने वाली 'Sister' 'बहन' न कहलाकर 'सिस्टर' ही कहलाएगी।

भाषा-विशेष के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ इस स्थिति पर भी ला देते हैं कि लक्ष्य भाषा की संस्कृति में उन संकल्पनाओं का चलन ही न हो, उसकी कल्पना ही न की जा सके। इस तथ्य को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। अंग्रेजी में आजकल 'dating' शब्द को व्यवहृत होते देखा जा सकता है। अंग्रेजी समाज-संस्कृति में इसका विशेष महत्व है जबकि अधिकांश भारतीय लोगों के लिए कल्पनातीत है। यदि इस शब्द में निहित अर्थ को व्यक्त किया जाए तो वह है -- ''पश्चिमी देशों में प्रचलित वह प्रथा जिसमें लड़के और लड़कियाँ एक-दूसरे को जानने, समझने तथा अंततः अपने जीवन साथी को चुनने के लिए एक-दूसरे के साथ घूमते-फिरते हैं।'' ऐसे में अनुवादक के समक्ष यह समस्या उठना स्वाभाविक है कि वह विषम संस्कृति वाले इस प्रकार के शब्द और उसमें निहित अर्थ को किस प्रकार प्रस्तुत करे।

कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ भाषाओं में असमानता की स्थिति ला देते हैं। यही कारण है कि व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय भाषाओं का संदर्भपरक तुलनात्मक विश्लेषण भी किया जाता है। संदर्भपरक तुलनात्मक विश्लेषण के दौरान दो भाषाओं के संदर्भपरक अर्थ की ओर ध्यान दिया जाता है, स्थितिपरक विशिष्टताओं की तुलना की जाती है। संदर्भपरक तुलनात्मकता के अंतर्गत स्थिति-विशेष, परिवेश, उद्देश्य, प्रतिभागिता, विषय-वस्तु आदि का विशेष महत्व होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संदर्भपरक तुलनात्मकता में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि कौन, किससे, कहाँ, क्या और क्यों कह रहा है। इन्हें ध्यान में रखते हुए भाषा परिवृत्तों का चयन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के निम्नलिखित दो वाक्य और उनके हिंदी रूपांतरण देखिए :

My mother has gone to Mysore. — मेरी माता जी मैसूर गई हैं।

My servant has gone to Mysore. — मेरा नौकर मैसूर गया है।

अंग्रेजी और हिंदी में उपर्युक्त दोनों वाक्यों की तुलना करने पर यह पता चलता है कि अंग्रेजी भाषा के वाक्य के संरचनात्मक स्तर पर दोनों वाक्य समान हैं। किंतु यह समानता हिंदी वाक्यों में कुछ भिन्नता के लिए हुए है। दोनों हिंदी वाक्यों में सर्वनाम 'मेरी' और 'मेरा' तथा क्रियापद 'गई हैं' और 'गया है' का अंतर है। यह अंतर संदर्भपरक तुलनीयता के परिप्रेक्ष्य में आया है क्योंकि प्रथम वाक्य आदरसूचक नजर आता है जबकि दूसरे वाक्य में आदर-भाव का अभाव है।

कार्ल जेम्स[12] के मतानुसार दो भाषाओं में वाक्यों की अनुवाद-तुलनीयता तभी स्थापित

हो सकती है जब वे तीन अर्थों अर्थात् उद्भासित अर्थ, अंतर्वैयक्तिक अर्थ और संदर्भपरक अर्थ को व्यक्त करते हैं। विडोसन ने इसी परिप्रेक्ष्य में 'प्रेग्मेटिक्स' की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए कहा कि ''व्यतिरेकी विश्लेषण से स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की ऐसी संरचनाओं को लेना चाहिए जो व्यवहारपरक अर्थ (pragmatic meaning) की दृष्टि से तुलनीय हो, भले ही ऊपरी संरचना की दृष्टि से कितनी ही भिन्न क्यों न हो।''[13]

व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रासंगिकता और अनुवाद का संदर्भ

प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक बुनावट के अपने नियम होते हैं, अपनी व्यवस्था होती है। व्याकरणिक व्यवस्था के मूल तत्वों का बोध, भाषा-संरचना की जानकारी का आधार है। भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था के मूल तत्वों के आधार पर उसकी प्रकृति, संरचना एवं शैली का बोध हो जाता है। भाषा का अध्ययन-अध्यापन करने वालों और लेखकों आदि के लिए भाषा का यह बोध आवश्यक है। जबकि अनुवादक के स्तर पर देखा जाए तो उसे न केवल एक (अर्थात स्रोत) भाषा की अपितु दूसरी (अर्थात लक्ष्य) भाषा की भी व्याकरणिक व्यवस्था के मूल तत्वों का ज्ञान होना नितांत आवश्यक है क्योंकि अनुवाद वह पुनीत कर्म है जिसके माध्यम से एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में अंतरित किया जाता है। इस अंतरण के दौरान कतिपय समस्याएँ-सीमाएँ आती हैं जिन्हें केवल अनुवादक ही अनुभूत कर सकता है। इसका मूलभूत कारण यह है कि किन्हीं दो भाषाओं के शब्दार्थ-वाक्य के साथ-साथ भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली संस्कृति आदि विविध संदर्भ पूरी तरह से एकसमान नहीं होते हैं। भाषा के इन विविध अंगों के स्तर पर दोनों भाषाओं के तत्वों में कहीं समानता और कहीं असमानता नजर आती है। इस आयाम से देखा जाए तो अनुवाद एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अनुवादक के पास भाषिक-ज्ञान एवं भाषिक-कौशल दोनों होना चाहिए। इन दोनों में पूरी तरह से दक्षता को ही 'ट्रांसलेटर कॉम्पीटेंस' अर्थात अनुवादक की क्षमता कहा जाता है। अनुवादक में इस क्षमता के विकास में संबंधित दो भाषाओं (अर्थात् स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा) का व्यतिरेकी विश्लेषण सहायक सिद्ध होता है। चूँकि व्यतिरेकी विश्लेषण के परिणामस्वरूप दो भाषाओं की असमान संरचनाओं में व्याप्त व्यतिरेकों (अंतर) स्पष्ट हो जाता है, इसलिए इन अंतरों के बोध से अनुवादक को अनुवाद करने में बड़ी मदद मिलती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुवाद के संदर्भ में व्यतिरेकी विश्लेषण का बहुत महत्व है। इस महत्व को विभिन्न दृष्टियों से देखा जा सकता है। ये हैं :

(क) अनुवाद की समस्याओं को जानने की दृष्टि से महत्व : अनुवाद प्रक्रिया मूलतः एक मानसिक प्रक्रिया है। अनुवाद कार्य करते समय अनुवादक स्रोत भाषा के तत्वों को अपने मस्तिष्क में ग्रहण कर उसे लक्ष्य भाषा में अंतरित (transfer) करता है। स्रोत और लक्ष्य भाषाओं के समान तत्वों के लिए लक्ष्य भाषा में उपयुक्त समानार्थी

पर्याय को ढूँढकर प्रस्तुत करना अनुवादक के लिए अपेक्षाकृत सरल होता है। जहाँ ये समानताएँ अनुवाद को सरल कार्य बना देती हैं। (जैसे 'Is this your book?' का अनुवाद 'क्या यह तुम्हारी किताब है?' कर देना) वहीं स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की असमानताएँ अनुवाद के मार्ग में बाधक बनकर खड़ी होती हैं। असमानताओं की ओर ध्यान न देने पर अनुवादक अक्सर शाब्दिक अनुवाद कर बैठता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के आम प्रचलित वाक्यांश 'Please, come in' का अनुवाद 'कृपया अंदर आइए' कर देना। जबकि वास्तविकता यह है कि इस वाक्यांश में हिंदी भाषा के क्रिया-शब्द 'आओ' को शिष्ट रूप प्रदान करने (अर्थात 'आइए' लिखने) पर उसमें 'कृपया' का भाव अपने आप समाहित हो जाता है। इसलिए यहाँ 'Please' शब्द का अनुवाद करना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार, अनुवादक के लिए इन असमान तत्वों के लिए लक्ष्य भाषा में समतुल्य संरचना का विधान करना कठिन होता है। भाषा के विविध अंगों के स्तर पर समानता-असमानता की स्थिति में अनुवादक को दो भाषाओं की भिन्न प्रकृति एवं संरचना के साथ-साथ अभिव्यक्ति प्रणालियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का महती कार्य करना पड़ता है जोकि भाषा के व्याकरणिक ज्ञान के अभाव में असंभव रहता है। ऐसे में अनुवादक के लिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा, अर्थात दोनों भाषाओं की मूलभूत व्याकरणिक संरचनाओं का बोध होना अपरिहार्य है ताकि वह दोनों भाषाओं की सहज अभिव्यक्तियों, संरचना-नियमों के साथ-साथ भाषा व्यवहार के वास्तविक रूपों को जान-समझ सके। इसी बोध में अनुवाद-व्याकरण अर्थात व्यतिरेकी विश्लेषण की संकल्पना निहित है। व्यतिरेकी विश्लेषण से हमें अनुवाद की समस्याओं का पता चलता है और इनसे पार पाकर ही बेहतर अनुवाद संभव हो पाता है।

(ख) व्यतिरेकी विश्लेषण के परिणाम और अनुवादक : व्यतिरेकी विश्लेषण के अंतर्गत इस प्रकार की तुलनाएँ करके दो भाषाओं के बीच व्याप्त समान और असमान तत्वों को स्पष्ट रूप से आकलित किया जाता है और निष्पत्तियाँ (परिणाम) प्रस्तुत की जाती हैं। अनुवाद-प्रक्रिया में इन निष्पत्तियों से लाभ उठाया जाता है। अनुवादक इन परिणामों को आत्मसात करके अपनी अनुवाद कौशल-क्षमता को विकसित कर सकता है, अनूदित पाठ की गुणवत्ता को बढ़ा सकता है। इससे अनुवादक को बड़ी सहायता मिलती है, उसे भाषा-विशेष के उपादान-विशेष के असमान तत्वों का स्पष्ट बोध हो जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा अनुवादक को स्रोत भाषा से संबंधित सामग्री को विकोड अर्थात् 'डिकोड' करने एवं उसे लक्ष्य भाषा सामग्री में कोडीकृत अर्थात 'एनकोड' करने में सहायता मिल सकती है। इससे अनुवादक स्रोत और लक्ष्य, दोनों भाषाओं के बीच कहीं अधिक दक्षता और आत्मविश्वास के साथ अनुवाद कर सकता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण की निष्पत्तियों से अनुवाद-प्रक्रिया में लाभ उठाते हुए अनुवादक

इनसे कई प्रकार से लाभान्वित हो सकते हैं। चूँकि व्यतिरेकी विश्लेषण में अध्ययन-विश्लेषण का आधार दो भाषाओं को बनाया जाता है इसलिए इससे अनुवादक को दोनों भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्थाओं, उनकी अभिव्यक्तियों एवं भाषिक-मुहावरों की प्रकृति से साक्षात् हो जाता है। इस विश्लेषण से अनुवादक में यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह अनुवाद में लक्ष्य भाषा के संरचनागत नियमों का सतर्कतापूर्वक पालन करते हुए सहज अभिव्यक्ति का प्रयोग कर सके। ऐसा करके अनुवादक अपने अनूदित पाठ को स्रोत भाषा की संरचना के वांछित प्रभाव से बचा पाने में सफल हो सकता है। उदाहरण के लिए, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में द्विरुक्त शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बहुत प्रबल है। जैसे 'जल्दी-जल्दी', 'धीरे-धीरे', 'अलग-अलग', तेज-तेज', 'चलते-चलते', 'रुकते-रुकते', 'कहाँ-कहाँ', 'सुनते-सुनते', 'घर-घर', 'सड़कों-सड़क' आदि। जबकि अंग्रेजी भाषा की प्रकृति में इस प्रकार के द्विरुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। 'बाल-बाल बचना' अंग्रेजी में केवल 'a narrow escape' है। व्यतिरेकी विश्लेषण से प्राप्त इस प्रकार की जानकारी से अनुवादक सतर्क हो जाता है और वह इस प्रकार की गलतियाँ करने से बच सकते हैं -- If you pay the money happily happily then it will be fine. या फिर We went to Jammu road to road। हिंदी में भले ही 'रिमझिम-रिमझिम बारिश हो रही है' कहा जा सकता है लेकिन अंग्रेजी में इस अभिव्यक्ति को द्विरुक्त रूप न देकर 'It is drizzling' ही होगा। इसी प्रकार यदि मूल (स्रोत भाषा) में यह वाक्य आए कि 'आजकल के विद्यार्थी संगीत सुनते-सुनते पढ़ते हैं' तो अनुवादक को चाहिए कि वह इसका अनुवाद 'Now a days students study while listering music, ही करे।

व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत सैद्धांतिक आधार पर अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की भाषिक संरचना के कठिनाई पैदा करने वाले उन संवेदनशील स्थलों का पूर्वानुमान लगा सकता है जहाँ असमान संरचनाओं और नियमों की भिन्नता के कारण वह मातृभाषा से होने वाले व्याघात (mother-tongue interference) या अन्य कारणों से गलती कर सकता है। उदाहरण के लिए, हिंदी के एक परसर्ग 'पर' के लिए अंग्रेजी में on, at, in, on आदि अनेक परसर्गों का प्रयोग होता है जो अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग नियमों से नियंत्रित होते हैं। यदि अनुवादक व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए इन नियमों से परिचित है तो वह अनुवाद में इस प्रकार की गलती नहीं कर सकता : 'Drop me on the station', (at)। इसी प्रकार अल्पभेदकता नियम के अनुसार अंग्रेजी के from और with effect from के लिए हिंदी में एक ही समानार्थी शब्द 'से' का प्रयोग होगा।

व्यतिरेकी विश्लेषण के माध्यम से अनुवादक को स्रोत भाषा की किसी अभिव्यिक्त-विशेष के लिए लक्ष्य भाषा में एक से अधिक समानार्थी अभिव्यक्तियाँ और विकल्प (options) तक उपलब्ध हो सकते हैं। इससे अनुवादक मूल पाठ की बारीक अर्थ-छटाओं और फोकस

के बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए सटीक विकल्प का चयन कर सकता है। उदाहरण के लिए, 'old' शब्द के लिए 'पुराना' और 'बूढ़ा' शब्द की उपलब्धता। व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए अनुवादक को यह पता चल सकता है कि किस भाषिक संदर्भ में कौन-सा विकल्प उपयुक्त होगा, लक्ष्य भाषा में किस प्रकार के प्रयोग पर प्रतिबंध है, किस व्यवहार-क्षेत्र में किस प्रकार की शब्दावली, शैली और अभिव्यक्तियों का प्रयोग करना चाहिए आदि। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के सर्वनाम 'you' के समतुल्य हिंदी में 'तू', 'तुम', 'आप' का उपलब्ध होना। मूल पाठ में आए अंग्रेजी के इस सर्वनाम के लिए अनुवादक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए 'तू', 'तुम' अथवा 'आप' में से किसी एक सर्वनाम-विशेष का उपयोग कर सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण के साथ विकल्प विश्लेषण की सुविधा जुड़े होने के कारण अनुवादक को विभिन्न अनुवाद विकल्प सुलभ हो सकते हैं जो उसे शायद अन्यथा स्मरण न आएँ।

स्रोत और लक्ष्य भाषा के व्यतिरेकी विश्लेषण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है अनुवादक के लिए इसकी प्रासंगिकता असंदिग्ध है।

(ग) कंप्यूटर अनुवाद प्रणाली को विकसित करने की दृष्टि से व्यतिरेकी विश्लेषण का महत्त्व : किसी भी भाषा विशेष में कंप्यूटर अनुवाद प्रणाली को विकसित करने की दृष्टि से व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रासंगिकता और भी असंदिग्ध है। 'कंप्यूटर अनुवाद' (जिसे 'मशीनी अनुवाद' की संज्ञा भी प्रदान की जाती है) ऐसा विषय है जो अनुवाद विधा को आधुनिक सूचना-तकनीक से जोड़ने का उपकरण है। 'मशीनी अनुवाद' अनुवाद का नया आयाम है जो भाषा के व्याकरण को प्रौद्योगिकी से जोड़कर चलता है। यह आयाम भाषा के नियमों को नए ढंग से विश्लेषित तथा प्रस्तुत करने की माँग करता है, जिसे ध्यान में रखना अपेक्षित है। मशीनी अनुवाद का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है, उस पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। आज कंप्यूटर रूपी मशीन भाषा के अभिधापरक कोड को रूपांतरित करने में पूरी तरह से सक्षम बन चुकी है। इसके लिए कंप्यूटर को मानव द्वारा भाषिक नियमों संबंधी नियमों को प्रोग्रामिंग के रूप में लैस करना होता है। इन नियमों की सरणिबद्ध व्यवस्था की सहायता से मशीन एक कोड को दूसरे कोड में अंतरित कर पाती है। और इस तरह मशीन एक (स्रोत) भाषा के पाठ को विकोड करके दूसरी (लक्ष्य) भाषा के पाठ में कोडीकृत करके अंतरित कर देती है। स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में विकोड से एनकोड होने की यह प्रक्रिया अनुवाद ही है और इस तरह मशीन के सहारे अनुवाद की अवधारणा संभव हो पाती है। वहीं हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मशीनी अनुवाद तभी सफल हो सकता है जब वह भी अनुवाद प्रक्रिया के उन्हीं सोपानों का अनुसरण करे जो मानव अनुवादक करता है। इसलिए मशीनी अनुवाद का सबसे अनिवार्य घटक मानव है क्योंकि मानव ही मशीन अनुवाद का प्रयोक्ता भी

है और विकासकर्ता भी। किंतु इतना तो अवश्य ही है कि प्रभावी मशीनी अनुवाद प्रणाली विकसित करने में भाषा-विशेष के सार्थक व्यतिरेकी विश्लेषण से बड़ी मदद मिलती है।

निष्कर्ष

वस्तुतः व्यतिरेकी विश्लेषण, अन्य भाषा सीखने और उससे/उसमें अनुवाद करने की प्रक्रिया में, दो भाषाओं की असमान संरचनाओं में परिव्याप्त व्यतिरेक को स्पष्ट करने वाली प्रणाली है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में व्याप्त अंतर को तुलना संबंधी आधार दृष्टि में अंतर, अध्ययन काल में अंतर, उद्देश्य के स्तर पर अंतर के साथ-साथ अध्ययन क्षेत्र के स्तर पर अंतर के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया जा सकता है। जहाँ तक व्यतिरेकी विश्लेषण पद्धति के उदय और विकास का संबंध है, यह आधुनिक भाषाविज्ञान की वह देन है जो अन्य भाषा शिक्षण के दौरान विकसित हुई और अनुवाद के साथ यह अन्योन्याश्रित है। व्यतिरेकी विश्लेषण के माध्यम से उन दो भाषाओं का ढाँचागत तुलनात्मक विश्लेषण, भाषा-शिक्षण के साथ-साथ अनुवाद में सहायक सिद्ध होता है। रूप विधान, वाक्य विधान और शब्द विधान रूपी भाषा के सार्थक तत्वों का व्यतिरेकी विश्लेषण अनुवाद की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन तत्वों के भेदोपभेदों के तुलनात्मक अध्ययन से अनुवादक को भाषिक स्तर पर समानताओं-असमानताओं का पता चल जाता है, जिसे ध्यान में रखकर अनुवादक शाब्दिक अनुवाद की भूल करने से बचते हुए अच्छा अनुवाद कर सकता है। अंत में यही कहा जा सकता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण की अनुवाद में व्यावहारिक उपयोगिता है।

❑

संदर्भ

1. अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, प्रो. सूरजभान सिंह, पृ. 15
2-4. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, डॉ. विजयराघव रेड्डी, पृ. 24 एवं पृ. 25, आमुख (ख)
5. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 12
6. भाषा शिक्षण, डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, पृ. 69
7. अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, प्रो. सूरजभान सिंह, पृ. 21
8. 'अनुवाद' पत्रिका (अंग्रेजी-हिंदी संरचना : व्यतिरेकी विश्लेषण, अनुवाद के संदर्भ में), अंक-88, जुलाई-सितंबर 1996, पृ. 24
9. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, डॉ. विजयराघव रेड्डी, पृ. 40
10. अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, प्रो. सूरजभान सिंह, भूमिका
11. The Linguistic Sciences and Language Teaching, M.A.K. Halliday, A.McIntosh and P.D. Strevens, p. 112
12-13. Contrastive Analysis, Carl James, p. 177-178 and 178

प्रो. हेमचंद्र पाँडे

अनुवाद में रचनांतरण

अनुवाद की एक प्रमुख विशेषता है -- अनुवाद में होने वाले विभिन्न प्रकार के 'रचनांतरण' (Transformations)। 'रचनांतरण' से अभिप्राय है मूल पाठ और अनूदित पाठ में व्याकरणिक अंतर। किसी भी अनुवाद में रचनांतरण स्वाभाविक रूप से घटित हो ही जाता है जो लक्ष्य भाषा की प्रकृति के द्वारा निर्धारित होता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय मूल पाठ और अनूदित पाठ में व्याकरणिक अंतर आ जाना अत्यंत स्वाभाविक बात है। अनुवाद में होने वाले व्याकरणिक अंतर मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं -- रूपपरक (Morphological); और वाक्यपरक (Syntactic)। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के शब्द भेदों (Parts of Speech) और पदों में अनुवाद के कारण आने वाला व्याकरणिक अंतर 'रूपपरक रचनांतरण' कहा जाता है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पदबंधों और वाक्य में अनुवाद के कारण आने वाला व्याकरणिक अंतर 'वाक्यपरक रचनांतरण' कहा जाता है।

रचनांतरण के प्रकार

व्याकरण के अनुसार तो रचनांतरण के कई प्रकार हो सकते हैं परंतु अनुवाद की दृष्टि से, जैसा कि ऊपर कहा गया है, चार प्रकार के रचनांतरणों का विशेष महत्त्व ये हैं :

(1) शब्दभेदों का रचनांतरण (2) पदों का रचनांतरण	रूपपरक रचनांतरण
(3) पदबंधों का रचनांतरण (4) वाक्यों का रचनांतरण	वाक्यपरक रचनांतरण

इन रूपांतरणों की चर्चा आगे की जा रही है :

1. शब्दभेदों का रचनांतरण

मूल पाठ के शब्दभेद के स्थान पर अनूदित पाठ में किसी अन्य शब्दभेद का प्रयोग 'शब्दभेदों का रचनांतरण' कहलाता है। दूसरे शब्दों में, अनुवाद करते समय स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के शब्दभेदों में आने वाले अंतर को हम शब्दभेदों का रचनांतरण कह सकते हैं। इसमें दो प्रकार की स्थितियाँ संभव हैं -- (क) दोनों भाषाओं में अमुक शब्दभेद होते हुए भी अनुवाद में किसी अन्य शब्दभेद का प्रयोग; तथा (ख) स्रोत भाषा के शब्दभेद का लक्ष्य भाषा में अभाव। इस दृष्टि से शब्दभेद के रचनांतरण को आगे समझाया जा रहा है।

(क) शब्दभेदों में पारस्परिक रचनांतरण : दोनों भाषाओं में अमुक शब्दभेद होते हुए भी अनुवाद में किसी अन्य शब्दभेद का प्रयोग 'शब्दभेदों का पारस्परिक रूपांतरण' कहा जा सकता है। इसके कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं :

(i) क्रिया और संज्ञा में रचनांतरण : अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही भाषाओं में क्रिया और संज्ञा जैसे शब्दभेद हैं। प्रायः क्रिया का अनुवाद क्रिया के द्वारा और संज्ञा का अनुवाद संज्ञा के द्वारा किया जाता है। परंतु नीचे दिए उदाहरण में स्रोत भाषा की क्रिया का अनुवाद लक्ष्य भाषा में संज्ञा के द्वारा किया गया है :

- Waiting (वर्तमान का क्रिया रूप) for your reply.
- आपके उत्तर की प्रतीक्षा (संज्ञा) में।

यहाँ पर Waiting क्रियारूप I am waiting का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है -- 'मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ'। परंतु पत्र के अंत मे प्रयुक्त होने पर हिंदी में स्वीकृत प्रचलित प्रयोग इसके इस शाब्दिक अनुवाद से भिन्न हैं। इसीलिए अंग्रेजी की क्रिया wait के स्थान पर यहाँ पर हिंदी में संज्ञा 'प्रतीक्षा' का प्रयोग हुआ है। अर्थात् यहाँ पर क्रिया और संज्ञा शब्दभेदों में पारस्परिक रचनांतरण हुआ है।

(ii) विशेषण और संज्ञा में रचनांतरण : सामान्यतः विशेषण का अनुवाद विशेषण के द्वारा किया जाता है परंतु नीचे दिए गए अनुवाद में अंग्रेजी के विशेषण के स्थान पर हिंदी में संज्ञा का प्रयोग हुआ है --

- I am glad to know that you are satisfied with your new job.
- मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको नई नौकरी पसंद आई है।

अंग्रेजी के वाक्य में glad विशेषण का प्रयोग विधेय की तरह हुआ है, जिसका हिंदी अनुवाद 'प्रसन्नता' संज्ञा के द्वारा किया गया है जो यहाँ उद्देश्य की भूमिका निभा रहा है। इस तरह यहाँ पर विशेषण और संज्ञा में रचनांतरण हुआ है।

(iii) क्रिया और विशेषण में रचनांतरण : सामान्यतः क्रिया का अनुवाद क्रिया के द्वारा

किया जाता है परंतु नीचे दिए गए अनुवाद में अंग्रेजी की क्रिया के स्थान पर हिंदी में विशेषण का प्रयोग हुआ है :

- All of us know the the difference between mass and weight. (Dream 2047), April 2007, p. 30)
- हम सभी द्रव्यमान और भार में अंतर से परिचित हैं। (ड्रीम 2047, अप्रैल 2007, पृ. 7)

यहाँ पर 'know' क्रिया का हिंदी अनुवाद विशेषण 'परिचित' के द्वारा किया गया है। इसलिए यहाँ पर क्रिया और विशेषण में रचनांतरण हुआ है।

अंग्रेजी की क्रियाओं का हिंदी में इस प्रकार का रचनांतरण इसलिए होता है क्योंकि हिंदी में बहुत-सी क्रियाएँ संज्ञा अथवा विशेषण में सहकारी क्रिया 'करना' या 'होना' जोड़ कर बनाई जाती हैं, जैसे : 'समाप्त होना', 'पूछताछ करना', 'क्षमा करना', 'उत्तीर्ण होना' आदि। इन्हें नामबोधक क्रिया कहा जाता है। (गुरू 1962, पृ. 322-323; सिंह 1990, पृ. 140-141) हिंदी की नामबोधक क्रियाओं की समानक अंग्रेजी क्रियाएँ धातुमूलक होती हैं : 'समाप्त होना' -- to end, 'पूछताछ करना' -- to enquire, 'क्षमा करना' -- to forgive, 'उत्तीर्ण होना' -- to pass आदि।

(iv) क्रिया-विशेषण और विशेषण मे रचनांतरण : अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करते समय क्रिया-विशेषण और विशेषण में भी रचनांतरण हो जाता है, जैसाकि हम नीचे दिए उदाहरण में देख सकते हैं :

- Although polio in incurable, it can be easily prevented through immunization. (Dream 2047, February-March 2007, p. 39)
- एक बार पोलियो हो जाने पर फिर उसका इलाज नहीं हो सकता, लेकिन इस बीमारी की रोकथाम करना आसान है। (ड्रीम 2047, फरवरी-मार्च 2007, पृ. 2)

यहाँ अंग्रेजी के क्रियाविशेषण 'easily' के स्थान पर हिंदी में विशेषण 'आसान' का प्रयोग हुआ है। इसलिए यहाँ पर क्रियाविशेषण और विशेषण के बीच में रचनांतरण हुआ है।

(v) क्रिया-विशेषण और संज्ञा में रचनांतरण : अंग्रेजी में कुछ स्थानवाची क्रिया-विशेषण संज्ञा अथवा विशेषण के द्वारा बनाए जाते हैं जिनका हिंदी अनुवाद करते समय रचनांतरण कर दिया जाता है। ऐसे क्रिया-विशेषणों के अनुवाद में संज्ञा के साथ परसर्ग 'में' जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिए :

- The accusation has been disproved editorially.
- इस आरोप का संपादकीय में खंडन कर दिया गया है।

यहाँ पर क्रिया-विशेषण 'editorially' का रचनांतरण संज्ञापद 'संपादकीय में' के रूप में हुआ है।

(ख) स्रोत भाषा के शब्दभेद का लक्ष्य भाषा में अभाव : यदि लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा का शब्दभेद है ही नहीं, तब तो शब्द भेद का रचनांतरण अपने आप ही अनिवार्य होगा। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी में 'जीरंड' (Gerund) एक अलग शब्दभेद है, उसकी एक अलग कोटि है। जीरंड किसी क्रिया को संज्ञा के रूप में द्योतित करता है। हिंदी में इस तरह का शब्दभेद नहीं है। हिंदी में इसके लिए या तो असमापिका क्रिया (क्रियार्थक संज्ञा) का प्रयोग होता है, या क्रिया को द्योतित करने वाली भाववाचक संज्ञा का। उदाहरण के लिए :

- Weighing (जीरंड) the stars and the universe (Dream 2047, April 2007, p. 30)
  तारों और ब्रह्मांड को तोलना (क्रियार्थक संज्ञा) (ड्रीम 2047, अप्रैल 2007, पृ. 7)
- Swimming (जीरंड) is good for health.
  तैरना (क्रिया) स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।
- Smoking (जीरंड) is prohibited.
  धूम्रपान (संज्ञा) वर्जित है।

इन उदाहरणों में जीरंड 'weighing', 'swimming' और क्रिया 'तोलना', 'तैरना' तथा जीरंड 'smoking' और संज्ञा 'धूम्रपान' में रचनांतरण हुआ है।

2. पदों का रचनांतरण

मूल पाठ में प्रयुक्त व्याकरणिक रूप से भिन्न किसी अन्य व्याकरणिक रूप के लक्ष्य भाषा में प्रयोग को 'पदों का रचनांतरण' कहते हैं। इसके अंतर्गत संज्ञाओं के वचन, लिंग आदि के रूपों, क्रियाओं के काल, वृत्ति आदि के रूपों तथा अन्य प्रकार के व्याकरणिक रूपों को शामिल किया जाता है। कभी-कभी पदों का रचनांतरण पदबंधों के रूप में भी किया जाता है। पदों का रचनांतरण भी लक्ष्य भाषा की प्रकृति तथा वाक्य में पदों के प्रकार्य पर निर्भर करता है। पदों के रचनांतरण के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं --

(क) वचन का रचनांतरण : अंग्रेजी के कुछ शब्द नित्य बहुवचन होते हैं जबकि उनके हिंदी समानक एकवचन के होते हैं। जैसे : spectacles -- चश्मा, handcuffs -- हथकड़ी, premises -- परिसर, playing cards -- ताश, deliberations -- विचार-विमर्श, negotiations -- बातचीत, talks -- बातचीत, armed forces -- सशस्त्र-सेना आदि। इनमें से कुछ का प्रयोग नीचे दिए वाक्यों में देखा जा सकता है :

- These spectacles (बहुवचन) are mine.
  यह मेरा चश्मा (एकवचन) है।
- The talks (बहुवचन) were held in a cordial atmosphere.
  बातचीत (एकवचन) सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में हुई।
- On ocassion of Total Lunar Eclipse on 4 March 2007, Vigyan Prasar organised a programme of night sky observation and Moon watching programme for the public at Vigyan Prasar premises (बहुवचन) (NCMRFW) in Noida. (Dream 2047, April 2007, p. 19)
  4 मार्च 2007 को पूर्ण चंद्र-ग्रहण के अवसर पर विज्ञान प्रसार ने आम लोगों के लिए विज्ञान-प्रसार परिसर (एकवचन) (एन.सी.एम.आर.डब्ल्यू.एफ.) नोएडा में रात्रि में आकाश दर्शन और चंद्र ग्रहण दर्शन कार्यक्रम का आयोजन किया। (ड्रीम 2047, अप्रैल, 2007, पृष्ठ 18)

इन उदाहरणों में हम देख सकते हैं कि स्रोत भाषा के बहुवचन के पदों का लक्ष्य भाषा के एकवचन के पदों में रचनांतरण हुआ है। रचनांतरण वाले पदों को रेखांकित करके दिखाया गया है।

नीचे दिए उदाहरण मे अंग्रेजी में humans का प्रयोग बहुवचन में हुआ है जिसके लिए हिंदी में एकवचन 'मानव' का प्रयोग किया गया है --

- Till recently, the *Homo habilis,* an extinct species of humans considered to be an ancestor of modern humans (बहुवचन), which existed between 1.5 and 2.0 million years ago, was believed to be the earliest hominid to make tools. (Dream 2047, April 2007, p. 20)
  अब तक, मानव की एक विलुप्त प्रजाति 'होमो हेबिलिस' को आधुनिक मानव (एकवचन) का पूर्वज माना जाता था जो 15 तथा 20 लाख वर्ष के दौरान पाए जाते थे। समझा जाता है कि औजार बनाने वाले सबसे पहले होमिनिड वही थे। (ड्रीम 2047, अप्रैल, 2047, पृ. 17)

इस प्रकार यहाँ भी वचन का रचनांतरण हुआ है।

(ख) पद का पदबंध के रूप में रचनांतरण : स्रोत भाषा के किसी पद के लिए लक्ष्य भाषा में पदबंध के प्रयोग को 'पद का पदबंध के रूप में रचनांतरण' कहते हैं। उदाहरण के लिए :

- This problem can be solved locally.
  इस समस्या का हल स्थानीय स्तर पर निकाला जा सकता है।

हम देख सकते हैं कि यहाँ पर अंग्रेजी के 'locally' पद का अनुवाद पदबंध के रूप में किया गया है -- 'स्थानीय स्तर पर'।

3. पदबंधों का रचनांतरण

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पदबंधों में व्याकरणिक अंतर को 'पदबंधों का रचनांतरण' कहते हैं। इसके कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं :

(क) संबंधबोधकों का प्रयोग : अंग्रेजी और हिंदी में संबंधबोधकों -- पूर्वसर्गों (Prepositions) और परसर्गों (Postpositions) -- के प्रयोग में कुछ असमानताएँ हैं जिसके कारण अनुवाद करते समय पदबंधों में रचनांतरण करना आवश्यक हो जाता है। जैसे :

- Parliament has the right to amend the Constitution.
  संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार है।
- The Party has decided to oppose the resolution.
  पार्टी ने प्रस्ताव का विरोध करने का निश्चय किया है।

यहाँ पर पहले उदाहरण में हिंदी में संबंधबोधक (परसर्ग) 'में' का आगम हुआ है जबकि अंग्रेजी के पदबंध में इसके समानक संबंधबोधक (पूर्वसर्ग) in का प्रयोग नहीं हुआ है। अंग्रेजी का पदबंध 'to amend the Constitution' कर्मवाचक पदबंध (Objective phrase) है जबकि अनूदित पदबंध 'संविधान में संशोधन करने' स्थानवाचक पदबंध (Locative phrase) है। इस प्रकार यहाँ पर पदबंध का रचनांतरण हुआ है। इसी तरह दूसरे उदाहरण में 'to oppose the resolution' -- 'प्रस्ताव का विरोध करना' पदबंध में संबंधबोधक (परसर्ग) 'का' का आगम हुआ है। इन उदाहरणों में भी पदबंधों का रचनांतरण हुआ है।

असमान संबंधबोधकों का प्रयोग : कभी-कभी स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में असमान संबंधबोधकों का प्रयोग भी होता है। जैसे, opposition <u>to</u> war -- युद्ध का विरोध, cure <u>from</u> desease -- बीमारी <u>का</u> इलाज, search <u>for</u> extra terrestrial civilizations -- पार्थिवेतर सभ्यताओं की खोज आदि। इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि अंग्रेजी के तीन अलग-अलग पूर्वसर्गों to, from, for के लिए हिंदी में एक ही परसर्ग 'का' का प्रयोग हुआ है। इन उदाहरणों में भी पदबंधों का रचनांतरण हुआ है।

(ख) विशेषक और विशेष्य का संबंध : विभिन्न भाषाओं में पदबंधों के अवयवों के बीच संबंधों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से होती है। अंग्रेजी में इसके लिए मुख्यतः पदक्रम के साधन को अपनाया जाता है। अर्थात् पदों के क्रम से उनके पारस्परिक संबंधों का पता चलता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी की अनेक संज्ञाओं का प्रयोग बिना किसी रूप-परिवर्तन के विशेषक (Attribute) के रूप में किया जा सकता है जबकि हिंदी में विशेषक के रूप मे प्रयुक्त होने पर सामान्यतः संज्ञा को विशेषण का रूप देना पड़ता है। उदाहरण के लिए :

विशेष्य | **विशेषक**

fresth air -- ताजी हवा | air attack -- हवाई हमला

new school -- नया स्कूल | school education -- स्कूली शिक्षा

हिंदी में विशेषक और विशेष्य के संबंध की अभिव्यक्ति के लिए 'हवा' से 'हवाई' और 'स्कूल' से 'स्कूली' विशेषण बनाए गए हैं जबकि अंग्रेजी में केवल पदक्रम के द्वारा ही विशेषक-विशेष्य संबंध की अभिव्यक्ति हो गई है। इसलिए यहाँ पर पदबंधों में रचनांतरण हुआ है। अंग्रेजी के उक्त पदबंध कर्मधारय समास की तरह हैं।

इससे कुछ भिन्न स्थिति fruit shop, cycle shop जैसे पदबंधों में देखने में आती है जिनका हिंदी अनुवाद 'का', 'की' संबंधबोधक के द्वारा किया जाएगा -- 'फलों की दुकान', 'साइकिल की दुकान'। यहाँ पर संबंधबोधक का आगम होने से पदबंधों का रचनांतरण हुआ है। अंग्रेजी के उक्त पदबंध तत्पुरुष समास की तरह हैं।

(ग) असमापिका क्रिया वाले विशेषण पदबंध : अंग्रेजी के विशेषण पदबंधों में असमापिका क्रिया का प्रयोग उत्तरविशेषक (Postmodifier) के रूप में होता है। (Greenbaum 1996, p. 220)। इस तरह के पदबंधों का अनुवाद करते समय भी रचनांतरण करना पड़ता है। उदाहरण के लिए :

- Ramesh was the last person to come
  सबसे बाद में आने वाला व्यक्ति रमेश था।
- Till recently, the *Homo habilis,* and extinct species of humans considered to be an ancestor of modern humans, which existed between 1.5 and 2.0 million years ago, was believed to be the earliest hominid to make tools. (Dream 2047, April 2007, p. 20)
  अब तक, मानव की एक विलुप्त प्रजाति 'होमो होबिलस' को आधुनिक मानव का पूर्वज माना जाता था जो 15 तथा 20 लाख वर्ष के दौरान पाए जाते थे। समझा जाता है कि 'औजार बनाने वाले सबसे पहले होमिनिड' वही थे। (ड्रीम 2047, अप्रैल 2007, पृ. 17)

हम देखते हैं कि इन दोनों वाक्यों में अंग्रेजी की असमापिका क्रिया का अनुवाद हिंदी की असमापिका क्रिया में 'वाला' परप्रत्यय लगा कर किया गया है जिससे हिंदी का पदबंध भी विशेषण पदबंध बन गया है। हम यह कह सकते हैं कि यहाँ पर 'वाला' परप्रत्यय के द्वारा पदबंध का रचनांतरण हुआ है। वस्तुतः यह न्यूनतम रचनांतरण का उदाहरण है।

परंतु निम्नलिखित वाक्य में असमापिका क्रिया 'to speak' में 'वाला' परप्रत्यय नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यहाँ पर यह क्रिया उद्देश्य (Subject) की तरह आई

है और विशेषण ‘comfortable’ का प्रयोग विधेय (Predicate) की तरह हुआ है, जैसा कि हिंदी अनुवाद से स्पष्ट होता है :

- Long habit has made it comfortable for me to speak through the creatures of my invention.
  पुरानी आदत के कारण अपने पात्रों के माध्यम से अपनी बात कहना मेरे लिए सहज हो गया है।

4. वाक्यों का रचनांतरण

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के वाक्यों में आने वाले व्याकरणिक अंतर को ‘वाक्यों का रचनांतरण’ कहते हैं। अनुवाद में वाक्य का रचनांतरण कई प्रकार से हो सकता है -- सरल वाक्य का संयुक्त वाक्य (Compound sentence) अथवा मिश्र वाक्य (Complex sentence) के रूप में अनुवाद और इसका विपरीत भी, कर्तृवाच्य का कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य के रूप में अनुवाद और इसका विपरीत भी आदि। कभी-कभी वाक्य-विभाजन भी करना पड़ता है अर्थात् स्रोत भाषा के वाक्य को तोड़कर उसका अनुवाद दो वाक्यों में करना पड़ता है। इन रचनांतरणों के कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं।

(क) सरल वाक्य का मिश्र वाक्य के रूप में अनुवाद : सामान्यतः सरल वाक्य का अनुवाद सरल वाक्य के रूप में ही किया जाता है और रचनांतरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिनके साथ कर्म के रूप में संज्ञा अथवा सर्वनाम के अतिरिक्त किसी क्रिया का भी प्रयोग होता है और ऐसे कर्म को संयुक्त कर्म कहते हैं। संयुक्त कर्म वाले वाक्य का अनुवाद करने में रचनांतरण का सहारा लेना पड़ता है। इस तरह की एक क्रिया है ‘to want’ उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए :

- I want him to come.
  मैं चाहता हूँ कि वह आए।
- I want you to come early.
  मैं चाहता हूँ कि तुम जल्दी आ जाओ।

यहाँ पर अंग्रेजी की 'want' क्रिया के दो-दो कर्म हैं -- ‘him’ और ‘to come’ तथा ‘you’ और ‘to come’। हिंदी में इन वाक्यों की संरचना को बदलना आवश्यक है। इसीलिए सरल वाक्य को यहाँ मिश्र वाक्य में बदला गया है। अंग्रेजी-वाक्यों के कर्म ‘him’ और ‘you’ अनूदित वाक्यों के आश्रित उपवाक्यों में उद्देश्य -- ‘वह’ और ‘तुम’ -- हो गए हैं तथा दूसरा कर्म ‘to come’ दोनों उपवाक्यों में विधेय -- ‘आए’ और ‘आ जाओ’ -- हो गया है। इस तरह पूरे वाक्य का रचनांतरण हुआ है।

अंग्रेजी की request क्रिया के साथ भी संयुक्त कर्म का प्रयोग होता है परंतु ऐसे वाक्य का रचनांतरण वैकल्पिक होता है। उदाहरण के लिए :

- I request him to come early.

  मैंने उससे जल्दी आने को कहा।

  मैंने उससे कहा कि वह जल्दी आ जाए।

यहाँ पर हिंदी के पहले वाक्य में रचनांतरण नहीं हुआ है, जबकि दूसरे वाक्य में रचनांतरण हुआ है।

नीचे दिए वाक्य में अंग्रेजी की क्रिया 'helped' के साथ भी संयुक्त कर्म 'me' और 'to solve' का प्रयोग हुआ है परंतु इस वाक्य का रचनांतरण करना आवश्यक नहीं है :

- He hepled me to solve this problem.

  उसने इस समस्या का हल करने में मेरी मदद की।

(ख) मिश्र वाक्य का सरल वाक्य के रूप में अनुवाद : नीचे दिए उदाहरण में मिश्र वाक्य का अनुवाद सरल वाक्य के रूप में किया गया है :

- the weight of the body changes when the body is taken from one place to another. (Dream 2047, April 2007, Vol. 9, No. 7, p. 30)

  एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने पर वस्तु का भार परिवर्तित हो जाता है। (ड्रीम 2047, अप्रैल 2007, खंड 9, अंक 2, पृ. 7)

यहाँ पर क्रियाविशेषण उपवाक्य में संबंधवाचक क्रियाविशेषण when का प्रयोग हुआ है जिसे हिंदी अनुवाद में बदल कर 'पर' परसर्ग की सहायता से क्रियाविशेषण पदबंध बना दिया गया है। इस तरह यहाँ पर मिश्र वाक्य का सरल वाक्य के रूप में रचनांतरण हुआ है। इस तरह के अनुवाद का एक और उदाहरण देखिए :

- I will go when you come.

  तुम्हारे आने पर मैं जाऊँगा।

यहाँ पर भी क्रिया-विशेषण उप-वाचक को 'पर' परसर्ग की सहायता से क्रिया-विशेषण पदबंध में बदलकर अंग्रेजी के मिश्र वाक्य का सरल वाक्य के रूप में अनुवाद किया गया है। इस तरह यहाँ पर भी मिश्र वाक्य का सरल वाक्य के रूप में रचनांतरण हुआ है।

ध्यान देने की बात यह है कि उदाहरण के रूप में ऊपर दिए दोनों वाक्यों का वैकल्पिक अनुवाद बिना रचनांतरण किए मिश्र वाक्य के रूप में भी किया जा सकता है। मूल और वैकल्पिक अनुवाद इस प्रकार हैं :

- the weight of the body changes when the body is taken from one place to another. (Dream 2047, April 2007, Vol. 9, No. 7, p. 30)

  जब किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है तो उसका भार परिवर्तित हो जाता है।

- I will go when you come.

  जब तुम आओगे तब मैं जाऊँगा।

अंग्रेजी के उक्त दोनों ही वाक्यों में से पहला अनुवाद (एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने पर वस्तु का भार परिवर्तित हो जाता है) प्रकार्यपरक है और दूसरा अनुवाद रूपपरक (औपचारिक) है। इन दोनों ही अनुवादों में से पहला अनुवाद ही अधिक सहज माना जा सकता है।

(ग) कर्तृवाच्य का कर्मवाच्य के रूप में अनुवाद : नीचे दिए उदाहरण में अंग्रेजी के कर्तृवाच्य का अनुवाद हिंदी में कर्मवाच्य के रूप में किया गया है :

- we can easily determine the sizes of the objects in daily use with an ordinary measuring scale, (Dream 2047 – Vigyan Prasar, November 2006, Vol. 9, No. 2, p. 31)

  रोजाना इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं के आकार को एक साधारण पैमाने की मदद से आसानी से मापा जा सकता है। (ड्रीम 2047 -- विज्ञान प्रसार, नवंबर 2006, खंड 9, अंक 2, पृ. 6)

यहाँ पर कर्तृवाच्य 'we can... determine' को अनुवाद में बदल कर 'मापा जा सकता है' कर दिया गया है। ऐसा इसलिए संभव हुआ है क्योंकि यहाँ पर अंग्रेजी का सर्वनाम 'we' सामान्यीकृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वह किन्हीं निश्चित व्यक्तियों का वाचक नहीं है।

(घ) कर्तृवाच्य का भाववाच्य के रूप में अनुवाद : नीचे दिए गए उदाहरण में अंग्रेजी के कर्तृवाच्य का अनुवाद हिंदी में भाववाच्य के रूप में किया गया है :

- I will not be able to do this work alone.

  मुझसे यह काम अकेले नहीं हो सकेगा।

भाववाच्य हिंदी की विशिष्टता है, अंग्रेजी में इस तरह का वाच्य नहीं है। इसमें क्रिया की प्रधानता होती है। समर्थता-असमर्थता के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए हिंदी में भाववाच्य का प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरण में हम देख सकते हैं। इसलिए यहाँ पर वाच्य का रचनांतरण हुआ है।

(ङ) वाक्य विभाजन : स्रोत भाषा के लंबे वाक्य को तोड़ कर छोटे वाक्यों के रूप में अनुवाद करना 'वाक्य-विभाजन' कहलाता है। अनुवाद करते समय सरल, संयुक्त, मिश्र -- किसी भी प्रकार के वाक्य का विभाजन करने की आवश्यकता पड़ सकती है। नीचे दिए गए उदाहरण में अंग्रेजी के लंबे मिश्र वाक्य का हिंदी में अनुवाद करने में वाक्य-विभाजन का सहारा लिया गया है :

- Some estimates show that almost the whole of India's economic

growth gets wiped out by the health costs of water pollution, which do not get factored into our economic calculation. (Speech by the President of India Shri K.R. Narayanan on the occasion of the inauguration of the Conference on the Potential of Rainwater Harvesting System, October 3, 1998)

इस संबंध में लगाए गए कुछ अनुमानों से पता चलता है कि लगभग संपूर्ण भारत का आर्थिक विकास जल-प्रदूषण जनित स्वास्थ्य पर आने वाली लागत के कारण ही समाप्त हो जाता है। इस लागत को हमारे आर्थिक आकलन में शामिल नहीं किया जाता। (वर्षाजल संग्रहण प्रणालियों की क्षमता संबंधी सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् का अभिभाषण, अक्तूबर 3, 2007)

यहाँ पर अंग्रेजी के मिश्र वाक्य का अनुवाद हिंदी में दो वाक्यों में किया गया है। मूल में रेखांकित उपवाक्य का अनुवाद अलग से सरल वाक्य के रूप में किया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद में रचनांतरण एक सामान्य प्रक्रिया है। रचनांतरण मुख्यतः लक्ष्य भाषा की प्रकृति के द्वारा निर्धारित होता है। व्यतिरेकी दृष्टिकोण से देखने पर रचनांतरण की प्रक्रिया अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है। अनुवाद के द्वारा स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पदों, पदबंधों और वाक्यों में आने वाला व्याकरणिक अंतर ही रचनांतरण होता है। अर्थात् रचनांतरण का प्रभाव वाक्य के किसी भी घटक पर पड़ सकता है -- पद, पदबंध या पूरे वाक्य पर। इसीलिए अनुवाद में रचनांतरण का विशेष महत्त्व है।

❑

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

अनुवादक के गुण

किसी भी विधा अथवा प्रकार के अनुवाद में अनुवादक का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण अथवा धुरी के समान होता है। इसके अभाव में अनुवाद की भाषा, सौंदर्य तथा अभिव्यक्ति का पहिया न तो हिल सकता है और न ही गति पकड़ सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अनुवाद की रचनाधर्मिता तथा सृजनशीलता के बाद ही अनुवादक अस्तित्व में आता है। अनुवादक का अनुवाद से जूझना निश्चित ही किसी रणक्षेत्र के सिपाही-सा संकटपूर्ण है। फिर भाव, भाषा, अभिव्यक्ति एवं संप्रेषणीयता को सफलतापूर्वक अपने अनुवाद में लौटाना किसी जीत से कम नहीं है।

वस्तुतः इस जोखिमपूर्ण कार्य में हार एवं जीत दोनों ही की बराबर संभावना बनी रहती है। थोड़ी-सी भी अपेक्षित युद्ध सामग्री (स्रोत एवं लक्ष्य भाषा की गहरी पकड़) के अभाव में अनुवाद रूपी जहाज के डूब जाने अथवा अस्तित्वहीन हो जाने की पूर्ण संभावना होती है।

निस्संदेह, अनुवाद एक जटिल एवं जोखिमपूर्ण कार्य है। ज्ञान-विज्ञान के सागर में अनुवादक की भूमिका किसी मल्लाह एवं खेवनहार से कहीं अधिक जोखिमपूर्ण, जिम्मेदार एवं औचित्यपूर्ण होती है। अपने पेशे विशेष का अभीष्ट ज्ञान न होने के कारण पूरी किश्ती तक के डूब जाने का भय बराबर अथवा अंत तक बना रहता है।

अतः अनुवाद रूपी किश्ती में अनुवादक रूपी मल्लाह को भाषा, भाव, अभिव्यक्ति, ग्राह्यता, संप्रेषण तत्त्व रूपी यात्रियों को सुरक्षित दूसरे किनारे (गंतव्य अर्थात् लक्ष्य भाषा) तक पहुँचाने की पूर्ण क्षमता हो, तभी अनुवादक की अनुवाद यात्रा पूर्णतः सफल हो सकती है। इसी बीच सभी यात्रियों (तत्त्वों) में से किसी एक यात्री (तत्त्व) के गंतव्य (लक्ष्य) से पहले गायब होने की बात से यह यात्रा सभी को आश्चर्य और जोखिम में भी डाल सकती है।

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव, व्यवहार अथवा संस्कार से अनुवादक होता है। इसमें शिक्षित-अशिक्षित की भी अपनी अलग भूमिका होने के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान से संबंध न रखने वाले अशिक्षित व्यक्ति तक की भूमिका निहित रहती है। यहाँ तक कि छोटे बच्चों में भी संस्कारतः अनुवाद की पकड़ और भावना दृष्टिगोचर होती है। आँचलिक व ग्रामीण भाषाओं के अर्थों को अनपढ़ व्यक्ति और औरतें, यहाँ तक कि बच्चे भी, अपनी भोली-भाली अभिव्यक्ति से संप्रेषित करते हैं, वह कौन से प्रकार का अनुवाद होता है, यह दूसरी बात है।

लेकिन पूछने वाले अथवा जानकारी करने वाले व्यक्ति का कार्य उनकी सहज अभिव्यक्ति अथवा अनुवाद से चल जाता है। वस्तुतः यह संप्रेषण ही बौद्धिक स्तर पर भाव, भाषा एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से परिष्कृत होकर अनुवाद के रूप में अभिहित होता है। अतः माना जाना चाहिए कि अनुवाद का अस्तित्व एवं माँग दैनिक जीवन से लेकर वैचारिक आदान-प्रदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सैद्धांतिक रूप में अनुवाद पर कार्य प्रारंभ से ही न केवल भारत में अपितु विश्व के अन्य देशों के साहित्यों में भी बराबर होते रहे हैं। पश्चिम में भी अनुवाद की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है। विश्व के प्रमुख कई देशों में अनुवाद के अस्तित्व, चिंतन एवं अवधारणाओं के उदाहरण मिलते हैं। विश्व का सबसे पुराना मिस्री अनुवाद लगभग 200 ई. पूर्व का रोजेटा प्रस्तर पर प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार विश्व के अन्य देशों में भी अनुवाद चिंतकों एवं विद्वानों ने बराबर अनुवाद के अलग-अलग सिद्धांतों पर कार्य किया। रोम, फ्रांस, इंग्लैंड आदि देशों में होरेस, कैतुलस, सिसरो (रोम), मार्टिन लूथर, एतीने दोले, जॉन क्लिफ, अब्राहम काउली, ड्राइडन, ऑर्नल्ड जैसे मुख्य अनुवाद चिंतक हुए हैं।

अतः विश्व साहित्य में अनुवाद एवं अनुवादक की भूमिका बराबर बनी रही है। विषय, कथ्य की सीमा में रहते हुए कहा जा सकता है कि अनुवादक की रचनाधर्मिता की बात सभी अनुवाद चिंतकों को प्रभावित करती रही है।

अनुभूतिजन्य विवेचन के आधार पर वे अनुवादक की योग्यता, क्षमता का मूल्यांकन अपनी पैनी दृष्टि से करते रहे। प्राग-भाषा विज्ञान संस्थान के अनुवाद वैज्ञानिक ब्लाडिमिर (Bladimir) प्रोजाचका ने अनुवाद सिद्धांतों में अनुवादक की भूमिका के इन पहलुओं पर जोर दिया है कि :

- अनुवादक को मूल के शब्दों को कथ्य तथा शैली, दोनों दृष्टियों से समझना चाहिए।
- अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य भाषाओं के संरचनागत अंतर को भी पार करना चाहिए।
- अनुवादक को मूल की शैलीगत संरचनाओं की पुनर्रचना अनुवाद में उतारनी चाहिए।

- मूल रचना के प्रभाव के अनुरूप ही अनूदित रचना का भी अपने पाठकों पर प्रभाव होना चाहिए।

इस प्रकार अन्य कई प्रमुख देशी-विदेशी विद्वानों ने भी अनुवादकों के संबंध में अपनी अवधारणाएँ प्रकट की हैं।

अतः कहा जा सकता है अनुवाद की स्तरीयता एवं प्रभावोत्पादकता के लिए एक अच्छे अनुवादक का होना अनिवार्य है। एक सफल अनुवादक होने के लिए किन-किन गुणों की अनिवार्यता है, उन्हें इस प्रकार संक्षिप्त रूप से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. अपेक्षित भाषाओं का गहन ज्ञान

सफल अनुवाद के लिए अनुवादक को लक्ष्य भाषा तथा स्रोत भाषा की पूरी पकड़ होनी चाहिए। कई बार स्रोत भाषा अथवा लक्ष्य भाषा के ज्ञान के अभाव में अनुवाद उचित अर्थ प्रदान करने के बजाय अनर्थ अथवा अर्थहीन होकर अपने मूल के कथ्य के एकदम विपरीत भटक जाता है। जैसे इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. सिपाही को देख चोर नौ-दो ग्यारह हो गए।

    Seeing the policemen thieves became nine two eleven.

    अथवा

    The thieves became nine two eleven to see the police.

शब्दों के समानांतर चलने पर भी यह वाक्य अनुवाद अथवा व्याकरण की दृष्टि से गलत है। सही अनुवाद इस प्रकार है -- 'The thieves ran away to see the police.'

2. दुखद स्थिति देख वे आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी को मिले।

    After seeing painful condition they met emergency medical officer.

लेकिन इसमें भी अर्थ का अनर्थ ही हुआ है जबकि होना चाहिए -- 'Seening critical stage they contacted E.M.O.' इस प्रकार के कई उदाहरण हम दैनिक जीवन एवं कार्य-व्यवहार में बराबर ही देखते रहते हैं।

ये तो सामान्य उदाहरण है। लेकिन साहित्य, विज्ञान अथवा विधि साहित्य का अनुवाद करते हुए दोनों भाषाओं के ज्ञान की अनिवार्यता है अन्यथा सफल अनुवाद कदापि नहीं हो सकता। इस संबंध में डॉ. दंगल झाल्टे के ये शब्द द्रष्टव्य हैं कि "अनुवादक को चाहिए कि स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की वाक्य-रचना, शब्दों की चयन प्रक्रिया, अभिव्यक्ति की सक्षम परख एवं पहचान और वाक्य विन्यास एवं शैली पर सांस्कृतिक प्रभाव का गहन अध्ययन करने के बाद ही अनुवाद कार्य पूरा करे, ताकि वह अपने दायित्व को अच्छी तरह निभा सके।"[1]

2. भाव की स्पष्टता

अनुवादक का दूसरा प्रमुख गुण अपने अनुवाद में भावों को स्पष्टता प्रस्तुत करना

है। जैसे कि पीछे कहा जा चुका है कि मूल शब्दों के समानांतर किया गया अनुवाद शाब्दिक अर्थ को स्पष्ट करने में भले ही सक्षम हो लेकिन भाव-पूर्णता एवं भाव-स्पष्टता की दृष्टि से कोसों दूर रहता है। प्रेमचंद द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका के (दिसंबर 1920) के अंक में प्रसिद्ध बंगाली अनुवादक लल्ली प्रसाद पांडेय ने अपने लेख 'मौलिक ग्रंथ और अनुवाद' में लिखा था -- ''अनुवाद ऐसा होना चाहिए, जिससे पढ़ने वाले की समझ में मूल लेखक का भाव आसानी से आ जाए। यह आवश्यक नहीं कि मूल के हर शब्द का अनुवाद अवश्य रहे। इसके लिए अनुवादक मनमाने शब्दों का प्रयोग कर सकता है। उसे और सब अधिकार हैं, वह सिर्फ भाव बदल डालने का अधिकारी नहीं है।''

भाव की स्पष्टता संबंधी बर्मी कविता का हिंदी में अनूदित एक उदाहरण इस प्रकार है :

हवा और बिजली के साथ
बरसती है वर्षा
रेंगता है पानी
नदियों और झरनों में
मथानी की तरह
खून सी जमी हुई बिजली ठनकती है
और तोड़ती है वस्तु
विदारती है सुंदरता
तूफानी रात के दौरान''[2]

जबकि इसका शब्दानुवाद इस प्रकार भी हो सकता था :

वर्षा व बिजली के द्वारा
वर्षा साथ में आई
झरने तथा नदियाँ
मथ तथा रेंग रहे थे
ठहरी हुई बिजली दुखी थी
बादलों को तोड़ती
बूढ़ा पेड़ धरती को छूने को झुकता था
वस्तुएँ टूट गई थीं
सुंदरता बिखर गई थी
रात को तूफान के दौरान

इस संदर्भ में एल.एन. शर्मा सौमित्र के ये विचार द्रष्टव्य हैं कि ''भाषा का ज्ञान

तथा भाषा की प्रकृति की पहचान वास्तव में दो अलग-अलग चीजें हैं। प्रत्येक भाषा में उसके शब्दों का प्रयोग करने में कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनमें कभी-कभी वे लोग भी अनभिज्ञ होते हैं जिनके बारे में यह समझा जाता है कि उन्हें भाषा का अच्छा ज्ञान है। 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' की प्रस्तावना में कहा गया है कि कुछ लोग सामान्य शब्दों को बिल्कुल सादा और सरल समझते हैं और यह मानकर चलते हैं कि उनके बारे में वे सब कुछ जानते हैं, पर यह सही नहीं है।''[3]

3. अनुवाद की मौलिकता एवं स्पष्टता

व्यावहारिक रूप से तो यह स्वयंसिद्ध है कि अनुवाद मूल कृति के अनुरूप कभी भी मौलिकता का दावा नहीं कर सकता। यहाँ तक कि स्वयं एक ही विधा का रचनाधर्मी भी अपने अनुवाद में अपनी मूल कृति की सी मौलिकता के निर्वहण में असमर्थ रहता है। फिर भी सफल अनुवादक वह है जिसके अनुवाद में मूल रचना के भावों का साफ-साफ प्रतिबिंब दिखाई दे।

मूल लेखक की भावनाओं का समावेश अनुवाद में आवश्यक रूप से आना चाहिए। अनुवादक द्वारा किए गए अनुवाद की सामग्री दूसरों को स्पष्टता एवं सरलता से समझ में आनी चाहिए। कहीं किसी प्रकार की त्रुटियाँ हों तो उसमें अनुवाद की अपेक्षाओं के अनुरूप सुधार अवश्य किया जाना चाहिए।

डॉ. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार -- ''अनुवाद की शुद्धता और सफलता का प्रमाण यही है कि शुद्ध लक्ष्य भाषा-भाषी आसानी से उसे समझ और सराह सकें। कहीं उसे बात खटकती है तो अनुवाद को सुधारना चाहिए।''

अनुवाद की स्पष्टता न केवल अनुवादक विशेष को बल्कि उसके प्रयोक्ताओं को भी सहजता से होनी चाहिए। अनुवाद सर्वथा अन्य संबंधित पाठकों की सुविधा एवं जिज्ञासा को ही ध्यान में रखकर किया जाता है।

अतः अनुवादक में अपनी भूलों को स्वीकार करने, उनमें समय तथा अपेक्षा के अनुसार सुधाार लाने एवं साथ ही मूल कथ्य की स्पष्टता को प्रस्तुत करने का गुण होना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी से किए गए एक जटिल अनुवाद का नमूना द्रष्टव्य है :

''एक गणितीय अनुकरण प्रतिरूप का प्रयोग करते हुए दहन वेश्म की तीन ज्यामितियों विभिन्न भंवर अनुपातों, चंचु रंध्र व्यास एवं शीकर कोणों का अध्ययन, इन प्राचलों के संयोजन का अभिज्ञान करने के लिए किया गया। इस संयोजन से सर्वोत्तम इंजन निष्पादन प्राप्त होने की आशा है, प्रतिवेदन सेवार्थी को प्रस्तुत कर दिया गया है।'' इस प्रकार के अनुवाद कहने भर के लिए अनुवाद भले ही हों लेकिन क्लिष्टता के कारण संबंधितों की पहुँच से बिल्कुल बाहर होते हैं। इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना

है कि -- ''अनुवादक को सबसे पहले अनुवाद्य सामग्री को आद्योपांत पढ़ना चाहिए। यह पढ़ने के बाद किसी अंश को समझने में कठिनाई हो तो उसे दो-तीन बार भी पढ़ा जा सकता है। मूल पाठ को पढ़ते समय उसमें प्रतिपादित विषय, उसकी तकनीकी अभिव्यक्तियों तथा उसकी शैली की विशेषताओं की ओर भी ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने से मूल पाठ को पूरी तरह समझने में सुविधा होती है।''[4]

4. सहज एवं बोधगम्य अनुवाद प्रस्तुत करना

सहज और बोधगम्य अनुवाद प्रस्तुत करना भी अनुवादक के प्रमुख गुणों में से एक है। भाव, भाषा-ज्ञान तथा अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर ही अनुवाद को गति प्रदान की जाती है। कई बार अनुवाद प्रस्तुत तो किया जाता है लेकिन अत्यंत जटिल, दुरूह एवं अग्राह्य होने के कारण अनुवाद उद्देश्यहीन हो जाता है। जो अनुवाद अपेक्षित उद्देश्य की पूर्ति न करे, उत्तम अनुवाद की कोटि में नहीं आ सकता।

अतः अनुवादक को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि उसके द्वारा किया गया अनुवाद अवश्य ही विषय की स्पष्टता को सरल और सहज तरीके से अभिव्यक्त करे। एक ही शब्द के कई पर्याय हो सकते हैं। अच्छा होगा ऐसे में यदि अनुवादक जटिल शब्दों के बजाय सरल एवं सीधी-सादी भाषा के शब्द-पर्यायों का प्रयोग करे तो अनुवाद की ग्राह्यता तथा लोकप्रियता में अधिक विस्तार हो सकता है।

कई बार अनुवाद की जटिलता के कारण भी अनुवाद के प्रति पाठक का मोहभंग हो जाता है। विशेषकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकार के अनुवादों में मूल रूप से शुष्कता होने के कारण यह प्रवृत्ति प्रायः पाई जाती है। कुछ तकनीकी तथा पारिभाषिक प्रकार के शब्द अवश्य होते हैं जिनका कभी-कभी कोई विकल्प नहीं होता। ऐसे में, विशेषकर हिंदी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए तकनीकी प्रकार के शब्दों के साथ उसका हिंदी लिप्यंतरित रूप, विषय तथा कथ्य की स्पष्टता होने तक दिया जा सकता है।

इस प्रकार के व्यवहार में पहले-पहल अड़चनें आ सकती हैं। लेकिन उसकी ग्राह्यता को ध्यान में रखते हुए कभी-कभार अनुवाद की शब्द-रचना के पर्यायों में लचक भी दी जा सकती है।

5. विषय का गहरा ज्ञान

अन्य अनिवार्य गुणों के क्रम में अनुवादक को विषय की गहरी जानकारी होनी भी आवश्यक है। किसी विषय विशेष की पर्याप्त जानकारी एवं ज्ञान के अभाव में अनुवादक से अच्छे अनुवाद की अपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती है। विषय की गहरी जानकारी की उपस्थिति में ही अनुवादक संबंधित अनुवाद के क्षेत्र में न्याय कर सकता है।

एक ही प्रकार का शब्द अलग-अलग विषयों में अपनी अलग-अलग अभिव्यक्ति

देता है। इसके लिए आवश्यक है अनुवादक को भाषा की पकड़ के साथ-साथ विषय का ज्ञान भी होना। जैसे : शब्द Application, Assurance तथा Realization शब्द देखे जा सकते हैं जिनका क्रमशः दैनिक कार्य व्यवहार का अर्थ 'प्रार्थनापत्र', 'आश्वासन' तथा 'अनुभूति' है। लेकिन अन्य क्षेत्रों एवं प्रयोगों में इनके अर्थ क्रमशः इस प्रकार भी होते हैं :

Application : अनुप्रयोग, परिश्रम, संगति, उपयोग, बल, प्रयोग, आवेदन-पत्र, प्रासंगिकता।

Assurance : धृष्टता, विश्वास, आत्मविश्वास, बीमा, भरोसा, प्रत्याभूति।

Realization : कार्यान्वयन, सिद्धि, बोध, प्रापण, उगाही, उपलब्धि, वसूली।

अतः कहा जा सकता है कि केवल विषय की गहरी जानकारी होने पर ही अनुवादक विषय विशेष में शब्द विशेष का सही उपयोग चयन एवं प्रयोग कर सकता है। उचित शब्द वाक्यों को शृंगार प्रदान करते हैं जबकि अज्ञानता तथा पर्याप्त ज्ञान के अभाव में प्रयुक्त शब्द न केवल अर्थ का अनर्थ करते हैं बल्कि वाक्य की संरचना को कुरूपता भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार का अनुवाद अवश्य ही हास्यास्पद हो सकता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि -- ''अनुवाद प्रक्रिया का सबसे कठिन और श्रमसाध्य कार्य विषय का गहरा ज्ञान है। यहाँ अनुवादक की योग्यता तथा प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस कार्य का कोई ऐसा सीधा-सादा सूत्र नहीं मिलता जिससे अनुवादक का काम यंत्रवत हो सके। यह कार्य न केवल शब्दशः अनुवाद है न भावानुवाद। अनुवादक को यथास्थिति इन दोनों में से किसी को भी अपनाना पड़ सकता है। उद्देश्य यह है कि स्रोत भाषा का कथ्य लक्ष्य भाषा में यथातथ्य रूप में अंतरित हो सके।''[5]

6. स्वतंत्र अभिव्यक्ति क्षमता

प्रायः अनुवाद करते समय शब्दावलियों तथा शब्दकोशों का प्रयोग किया जाता है। कई-कई बार यह देखने में आता है कि शब्दकोशों के आधार पर किया गया अनुवाद भाषा की मौलिकता को पर्याप्त क्षति पहुँचाता है। ऐसे में अनुवादक अपने शब्दो की अर्थ-संबंधी संतुष्टि तो प्राप्त कर सकता है, लेकिन भावों की स्पष्टता के मोह का ज्ञान उसे नहीं हो पाता।

शब्दकोश संदर्भ एवं सहायक तो हो सकते हैं लेकिन मार्गदर्शक कदापि नहीं। शब्दकोशों की मूलभूत उपयोगिता को तो नहीं नकारा जा सकता है लेकिन अच्छा अनुवादक वह है जिसमें शब्दकोशों की शब्द-संपदा के अतिरिक्त अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति क्षमता भी मौजूद हो। यानी वह पारिभाषिक शब्दावली, वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रकार के शब्दकोशों के शब्दों के अतिरिक्त शब्दों एवं भावों को उचित रूप से उचित स्थान पर विश्लेषण करने की क्षमता भी रखता हो।

केवल एक ही आधार पर अर्थात् शब्दकोशों के अनुकरण पर किया गया अनुवाद

न केवल शुष्क, रूखा और रसहीन होता है बल्कि ज्ञान के अन्य क्षेत्रों की भी मांग करता है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति की क्षमता अनुवाद को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करती है। कई बार छोटे-छोटे वाक्यों में स्वतंत्र अभिव्यक्ति की क्षमता के अभाव में अनुवाद गलत और निष्प्रभावी हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक वैज्ञानिक संस्थान के अनुवादक द्वारा किए गए निम्नलिखित अनुवाद को देखा जा सकता है :

.......With drastic successes, takes in hand.

.......हिरावल सफलताओं के साथ, हाथ में लेता है।

......जबकि इसका सहज एवं सरल अनुवाद इस प्रकार हो सकता है :

''... ... ... सफलतापूर्वक अथवा पूर्ण सफलता के साथ प्रारंभ करता है या कार्य करता है।''

7. संप्रेषणीय अनुवाद

अपने द्वारा किए गए अनुवाद को संप्रेषणीय बनाना भी अनुवादक का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। कभी-कभी अनुवादक, अपनी अभिरुचि अध्ययन एवं प्रवृत्ति के अनुसार अनुवाद करते समय भावनाओं में किसी दूसरी ओर निकल जाता है। इस स्थिति में अनुवाद की उपयुक्तता एवं संप्रेषणीयता नष्ट हो जाती है। अतः अनुवादक को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि किसी भी रूप में उसके द्वारा किया गया अनुवाद संप्रेषणीय हो। अनुवाद से पूर्व अनुवादक को इन सब बातों पर बारीकी से ध्यान देना चाहिए कि किस रूप में अनुवाद प्रभावी और संप्रेषणीय बने।

इस संबंध में डॉ. गोपाल शर्मा का कथन है -- ''अनुवाद करने से पूर्व अनुवादक को यह अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि मूल का उद्देश्य क्या है और लेखक अपनी बात को पाठकों के लिए किस वर्ग तक पहुँचाना चाहता है। उसे यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वह विषय-वस्तु को किस रूप में रखना चाहता है और, उसकी भाषा शैली कैसी है? इन सब बातों को जान लेने के बाद अनुवादक को स्वयं यह देख लेना चाहिए कि मूल के अनुवाद का क्या उद्देश्य है।

उसके अनुवाद के पाठक कौन हैं? वे अनुवाद की भाषा कहाँ तक समझ सकेंगे और उस विषय की उन्हें कितनी जानकारी है। इन बातों के आधार पर अनुवादक को यह फैसला कर लेना चाहिए कि अनुवाद स्वतंत्र हो या उसमें मूल जैसी भाषागत बारीकियाँ लाने की जरूरत है।''[6]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनुवादक को अपने में कई प्रकार की मौलिक क्षमताओं को विकसित करने की सदैव आवश्यकता होती है। वह अनुवाद उत्तम नहीं होता जिसे स्वयं अनुवादक महसूस करे बल्कि उसे ही उत्तम प्रकार का अनुवाद कहा जा सकता है जो माँगकर्ता की अभिरुचि एवं अपेक्षा के अनुरूप हो और जो उन्हें संबंधित

विषय की जानकारी सहज तथा सरल तरीके से प्रदान करने में सक्षम हो पाए।

हर एक प्रकार का अनुवाद दूसरे प्रकार के अनुवाद से किसी न किसी रूप में भिन्न है। अतः अनुवादक को विषय की बारीकियों के अनुरूप ही शब्द एवं वाक्य का चयन तथा अनुवाद प्रस्तुत करना चाहिए। कई बार प्रशासनिक और साहित्यिक प्रकार के अनुवादों में शब्दों का अनुवाद कुछ अलग संदर्भ में किया जाता है जबकि वैज्ञानिक तथा विधि के अनुवाद में उन्हीं शब्दों एवं वाक्यों के अनुवाद की अभिव्यक्ति अलग संदर्भ और भाषा की माँग कर सकती है।

अतः सफल अनुवादक को दोनों ही प्रकार के अपेक्षित साहित्यों का पर्याप्त अवसंरचनात्मक तथा भाषागत ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। स्वाध्याय एवं निष्ठा ही अनुवादक को अथवा किसी को भी, किसी भी विधा में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देती है। अतः विषय, कथ्य, संदर्भ व माँग के अनुरूप सहज और ग्राह्य शैली में किया गया अनुवाद ही उत्तम प्रकार के अनुवाद की श्रेणी में आ सकता है।

❑

संदर्भ

1. प्रयोजनमूलक हिंदी : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. दंगल झाल्टे, पृष्ठ 108
2. समकालीन बर्मी कविताएँ, अनु. डॉ. दिनेश चमोला, पृष्ठ 87
3. अनुवाद चिंतन, एल.एन. शर्मा 'सौमित्र', पृष्ठ 59-60

4-5. कार्यालयी अनुवाद की समस्याएँ, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अजीत लाल गुलाटी, पृष्ठ 50 एवं 51

6. अनुवाद बोध, संपा. : डॉ. गार्गी गुप्त, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, पृष्ठ 2

डॉ. जगदीश शर्मा

अनुवाद में सांस्कृतिक संवाद

मानव प्रजाति सदैव काल और स्थिति के अनुसार औपचारिक-अनौपचारिक संवाद-साधन एवं विधा विकसित करती रहती है जिसमें राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और औपनिवेशिक शक्तियाँ उसे अपने इतिहास, संस्कृति, साहित्य, धर्म, लोक-आख्यान और पारिस्थितिकीय संपदा को समझने के लिए प्रेरित करती है। संवाद करना स्वयं में ही एक विशिष्ट विधा है और बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज में तो यह विशेष रूप से एक कठिन प्रक्रिया है। अनुवाद करते समय कथ्य के अर्थ या भाव को किस स्तर पर अंतरित अथवा पुनःवादित/अनुवादित किया जाए, यह अनेक स्तरीय प्रक्रिया है। फिर भी अनुवादक यह जानता है कि वह भले ही लक्ष्य भाषा में अपने कथ्य को कितना भी समावेशित कर ले; उसका पिष्टपेषण कर उसे पूर्णतः उस नए परिवेश में ढालने का प्रयास करे, उसके लिए तरह-तरह के सहायक अर्थोन्मेषी उपादान तैयार करे, लेकिन वह कथ्य को पूर्णतः व्यक्त नहीं करता है। अतः वह सदैव इस खोज में रहता है कि अंतःसांस्कृतिक एवं अंतरसांस्कृतिक संवाद को लक्ष्य भाषा में कथ्य के अस्तित्व एवं आत्मा को प्रभावित किए बिना किस प्रकार अनूदित किया जाए।[1]

सांस्कृतिक अनुवाद : एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया

मूल प्रश्न यह भी है कि सांस्कृतिक संवाद-अनुवाद अन्य अनुवाद क्षेत्रों की तुलना में अधिक दुरूह और चुनौतीपूर्ण क्यों हो जाता है? संभवतः इसका उत्तर इस तथ्य में है कि संस्कृति अपने आप में अत्यधिक गुंफित और संश्लिष्ट संकल्पना है। इसका सही-सही निर्वचन शायद ही किया गया हो। हालाँकि कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृति कुछ विशेष तत्त्वों में निहित रहती है और ये तत्त्व ही उस संस्कृति को पोषित करते हैं। इस प्रकार, संस्कृति हालाँकि, एक अत्यंत अस्पष्ट संकल्पना है। लेकिन अनुवाद

करते समय यह स्पष्ट अपेक्षणीय तत्त्व के निदर्श में एक महत्त्वपूर्ण अर्थांतरण गतिविधि के रूप में उभर कर सामने आ जाती है क्योंकि यह आमतौर पर पाठ में संस्कृति समाहित एवं समावेशित रहती है और यह जितनी अधिक समाहित एवं समावेशित रहेगी उतना ही अनुवाद करते समय इसे समझना कठिन होगा।[2] संस्कृति एक समूह, एक भौगोलिक क्षेत्र, एक प्रदेश, राज्य एवं राष्ट्रों को अलग करते हुए उनकी विशिष्ट पहचान करती है। यह धर्म, जाति, व्यवसाय, योग्यता आदि से भी जन-समुदायों को विभाजित करती है तथा उन्हें विशिष्ट अभिधान देती है। यही नहीं विशिष्ट कारण, जीवन-शैली तथा जीवन-दर्शन आदि भी संस्कृति के पोषक तत्त्व हैं तथा इनके कारण भी समाज में विशेष संस्कृतियों का निर्माण होता है।[3] ये तत्त्व किसी भी संस्कृति में इतने गुंफित एवं जीवंत होते हैं कि उन्हें अलग करके संस्कृति की पहचान बनाए रखना असंभव होगा। संस्कृति किसी समाज की सार्वभौमिक सोच, आदर्श तथा उसकी कला धरोहर की भी परिचायक होती है। इसमें राष्ट्रीय आदर्श, विशिष्ट कारक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक संपदा तथा भावनात्मक एवं प्रतिभात्मक गुण रहते हैं जो किसी समाज की संरचना करते हैं। वस्तुतः संस्कृति इनकी अनुपस्थिति में न केवल जीवंतता-विहीन हो जाएगी अपितु वह गड्डमड्ड होकर एक प्रकार की अस्पष्टता और भ्रम की स्थिति भी उत्पन्न करेगी, सामाजिक व्यवस्था के सुचालन को प्रभावित करेगी। संस्कृति सदैव अपने वर्तमान में सक्रिय रहती है तथा भाषिक तत्त्वों को भी प्रभावित करती है।

यही कारण है कि आज वैश्विक स्तर की नित नए शब्दों का प्रादुर्भाव और उनका स्वीकारना सतत् क्रियाशील है। मोवी लैंग्वेज (मोबाइली भाषा) तथा खान-पान एवं जीवन आस्था संबंधी सांस्कृतिक पुट लिए शब्द आजकल वैश्विक स्तर पर स्वीकार किए जा रहे हैं।

सांस्कृतिक तत्त्वों के अनुवाद में सदैव समस्या रही है। तथापि यह माना जाता है कि सह-अस्तित्व वाले समुदायों या भाषा-भाषियों में इस प्रकार के सांस्कृतिक अनुवाद कम दुष्कर होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि शेक्सपीयर का फ्रांसीसी या जर्मन भाषा में अनुवाद करना हो तो उनकी सम-सांस्कृतिक अथवा सह-सांस्कृतिक भौगोलिकता के कारण लक्ष्य भाषा में सांस्कृतिक-समावेश सरल होगा तथा मूल कथन को अत्यधिक लक्ष्य निष्ठ बनाने की आवश्यकता नहीं होगी।[4] यही बात भारतीय भाषाओं पर भी लागू होती है; उत्तर एवं मध्य भारत की सामग्री का अनुवाद करते समय सह एवं सम सांस्कृतिक परिवेश के कारण मूल कथ्य को सहजता और स्वाभाविकता से अंतरित किया जा सकता है; परंतु उत्तर-पूर्व या उत्तर-दक्षिण अथवा दक्षिण-पूर्व और पश्चिम-पूर्व में अगर एक छोर से दूसरे छोर पर मूल से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करना हो तो सांस्कृतिक अंतरण की

समस्या उभरकर सामने आती है। अनुवाद करते समय समाज में वर्ग-विभेद को नजरअंदाज करके सही संप्रेषण संभव नहीं है। विशेषकर भारतीय समाज में स्त्री समाज और दलित या उपेक्षित समाज की पहचान को अत्यंत संवेदना से लक्ष्य भाषा तक पहुँचाना गंभीर चुनौती है।

अनुवाद को सांस्कृतिक परिवेश में स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। एक सृजनात्मक लेखक के लिए शब्द एक सांस्कृतिक याद्दाश्त की तरह है जिसकी सहभागी संपूर्ण संस्कृति एवं समाज होता है। पूरे समाज की धरोहर उसी शब्द-विशेष में समाहित होती है। यही शब्द धरोहर जब परिवेश विशेष में प्रयुक्त होती है तो उस समय के अनुभव सजीव हो जाते हैं और वे उसके इतिहास को मुखरता देते हैं। अतः इसका साहित्य में अनुसेवन करते समय पाठक उससे उद्वेलित होता है। अनुवादक को इस सहभागिता के अनुभव को लक्ष्य भाषा में पुनः संदर्भगत बनाकर प्रस्तुत करना होता है ताकि पाठक भी उस विलग संस्कृति के अनुभव में सहभागी हो सके।[5] इसी संदर्भ में आंद्रे लिफेव्रे और सूसन बेसनेट की पुस्तक 'अनुवाद इतिहास और संस्कृति' इस तथ्य पर ध्यानाकर्षित करती है कि अनुवाद की सफल प्रक्रिया पर प्रकाशन उद्योग अथवा विचारधारा, विशिष्ट लेखन (यथा स्त्री और दलित लेखन तथा औपनिवेशीकरण आदि) किस प्रकार प्रभावी होते हैं। इस प्रक्रिया में सामाजिक व्यवस्था और साहित्य के बीच तादात्म्य एवं अंतःसंवाद का स्थापित होना महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट होता है कि पूर्ण अनुवाद के लिए स्रोत भाषा के संवादीय मूल्यों एवं समय-काल परंपराओं संबंधी तमाम तत्त्वों को लक्ष्य भाषा में यथासंभव समतुल्यों से विवर्तित कर लिया जाए। निष्ठा एवं सौंदर्य का प्रश्न तो सदैव परस्पर विरोधी स्थिति उत्पन्न करेगा ही।[6]

सांस्कृतिक अनुवाद : एक नए विश्व से परिचय

अनुवाद एक विलग दुनिया से सामना होने जैसा होता है। इसमें दो अलग-अलग संवेदनाओं में विरोध की स्थिति होती है, क्योंकि वे अलग-अलग सामाजिक मूल्यों एवं संस्कृतियों से आविर्भूत होते हैं। इस प्रकार की स्थिति में एक विकल्पन एवं रूपांतरण की प्रक्रिया में हिचक या विरोध स्वाभाविक रूप में उभर आता है। व्यक्ति अपने-अपने समाज के मूल्यों तथा संस्कृति के अनुसार परवरिश पाता है। इसलिए वे उसकी सोच तथा जीवन शैली का अंग बन जाते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक अंतरण हेतु सर्जनात्मक लेखक अपने पाठक वर्ग को ध्यान में रखकर लेखन-कार्य करता है तथा यह संस्कृति एक आभासीय परंतु सफल अंतरण में एक अनिवार्य घटक बन जाती है।[7] पुर्तगाली आधिपत्य के बाद गोवा की संस्कृति को पूर्णतः मिटाने एवं उस पर औपनिवेशिक संस्कृति लादने के प्रयास इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं, परंतु जिस प्रकार मूल निवासियों (Natives)

ने अपनी संस्कृति को अनुवाद के माध्यम से आक्रांताओं अथवा औपनिवेशिक शक्तियों के दमन के बावजूद जारी रखा तथा अंततः वे अपने लिए अलग साहित्यिक अवकाश स्थापित कर सके; जिसके कारण आज गोवा की सांस्कृतिक विरासत बच सकी है। इसमें लेखक की अपनी माटी, मूल्य, धरोहर के प्रति निष्ठा तथा अभिव्यक्ति में सफलता अनुवादक लेखक का श्रेय है।[8]

सांस्कृतिक अंतरण

सांस्कृतिक अंतरण के मुख्य बिंदु हैं -- लेखक और विषय का संबंध; लेखक और पाठक का संबंध; तथा अनुवादक और पाठ के मध्य संबंध। साथ ही, सांस्कृतिक अंतरण के लिए बहुआयामी संबंध एवं दृष्टिकोण की आवश्यकता रहती है। यह केवल भाषा के माध्यम से संभव नहीं है। जहाँ अनुवादक को लेखक के साथ अंतरंग संबंध स्थापित करके विषय-वस्तु, संवाद-शैली, तकनीक, अभिव्यक्तियों के आयामों तथा चिंतन धारा को समझना होता है वहीं इसे पाठक के साथ भी तादात्म्य स्थापित करना होता है। यह तादात्म्य कहीं-कहीं मार्गरूढ़ (En-route) भी होता है।[9] पंजाबी में लिखित राजेंद्र सिंह बेदी की कृति 'एक चादर मैली सी' का खुशवंत सिंह द्वारा किया गया अनुवाद *I Take this woman* एक उत्तम सांस्कृतिक अंतरण अनुवाद है। वास्तव में सांस्कृतिक अंतरण में कई भाषाई सीमाओं का अतिक्रमण भी हो जाता है। भारतीय परिवेश में 'छोटी', 'बड़ी', 'सौत' तथा अनेक स्थानीय अभिव्यक्तियाँ हैं जिनके अनुवाद में निश्चित रूप से भाषाई अतिक्रमण करना अपेक्षणीय है। यहाँ तक कि ब्याज-स्तुति और ब्याज-निंदा में भी प्रत्यक्षतः गाली या अपमानसूचक शब्दों के माध्यम से अत्यंत स्नेहिल-भाव द्वारा व्यक्त किया जाता है। उत्तर भारत में सामान्यतः बेटी को गले लगाते समय ''धीये मर जाणिये तू ठीक तो है'' (बेटी तू मर जाए, तू सकुशल तो है)। यह अक्सर माँ-बेटी के अंतरंग मिलन का वाक्य होता है। इस प्रकार के वाक्य के अनुवाद में पूरी सामाजिक विरासत को जानना आवश्यक होगा। गेटे का अनुवाद के विषय में मत है कि अनुवादक यदि निष्ठा से अपने धर्म का पालन करे तो वह एक पूरे राष्ट्र या द्वीप के लोगों एवं उनकी संस्कृति को पाठकों के सामने ला सकता है। परंतु इसके लिए उसे लक्ष्य पाठक की अभिरुचि और मान्यताओं का भी ध्यान रखना होगा ताकि उसकी स्वीकार्यता बनी रहे।

भारतीय परिवेश में अनुवाद करते समय आपसी संबंधों, अनुज-अग्रज, वंदनीय से व्यवहार करते समय सम्मान एवं संख्या की अस्पष्टता की स्थिति में 'आप' का सीधा अनुवाद 'You' काफी भ्रामक हो जाता है। यही नहीं, यह सामाजिक उपहास तथा असमंजस का सूचक भी बन जाता है। इसी तरह, एकवचन-बहुवचन का भी भेद रखना पड़ता

है। 'वे' का They अनुवाद भी उचित नहीं है; किंत अनुचित भी नहीं; यदि यहाँ संख्या का उल्लेख हो। किंतु यह सम्मान सूचन के प्रयोग में भी लाया जाता है। इसी प्रकार, आदरसूचक शब्द (मसलन 'नमस्ते') किसी भी अवसर तथा समय प्रयोग में लाया जा सकता है। 'धन्यवाद' भी अनेक अवसरों पर अनुवाद में भ्रामकता उत्पन्न कर सकता है। विशेष अवसरों पर अभिवादन के अनेक रूप प्रयोग में आते हैं, शोक आदि की स्थिति में सामान्यतः 'नमस्ते' या 'धन्यवाद' आदि शब्दों का प्रयोग सामाजिक मान्यता के अनुरूप नहीं माना जा सकता है। अतः इसका अनुवाद करते समय लक्ष्य पाठक के परिवेश को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।[10]

सांस्कृतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अनुवाद की भूमिका अहम हो गई है और इसमें तथाकथित सांस्कृतिक वैश्विकी की निर्मित भी हुई है; जो संवाद की प्रक्रिया में गति एवं जीवन के सभी पहलुओं में प्रगति तथा विचार-आंदोलन में जीवंतता लाती है। नाइडा का भी यह मत है कि दो राष्ट्रों या एक ही राष्ट्र के मध्य अंतर्भाषिक संवाद संभव है, परंतु इस नित-परिवर्तनशील विश्व में कदापि स्थायी या आदर्श नहीं होगा। संस्कृति में जो बहु-आयामिकता दिखाई देती है वह भाषाई विखंडन या विलगता की कारक है और आवश्यकतानुसार भाषा में स्थाई बदलाव भी ला देती है।[11]

नाइडा के अनुसार सर्वोत्तम अनुवाद 'अनुवाद' की तरह नहीं लगना चाहिए; स्वाभाविकता उसका मुख्य अपेक्षणीय बिंदु है। अतः अनुवाद में अननुवाद्यता के होने से वह अनुवाद नहीं अपितु एक स्वाभाविक पाठ प्रतीत होगा।[12] अतः सांस्कृतिक अननुवाद्यता का तत्त्व अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे जूझते ही अनुवादक स्वाभाविकता की खोज कर पाएगा और लक्ष्य भाषा में 'कथन' कर सकेगा। सांस्कृतिक अननुवाद्यता पर गहन चिंतन करते समय कभी-कभी कुछ पाठ को छोड़ना या उससे छेड़छाड़ भी करनी पड़ सकती है, उसे पुनः लिखना पड़ सकता है, पुनः स्रोत पाठ को समझकर उसका नव-लेखन भी करना पड़ सकता है ताकि संदर्भ की अपेक्षा के अनुसार उसमें स्वाभाविकता एवं बहुआयामी-समतुल्यता भी प्राप्त की जा सके।

सांस्कृतिक अननुवाद्यता

सांस्कृतिक अननुवाद्यता की परिस्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। कई बार स्रोत भाषा की अभिव्यक्तियाँ जब अननुवाद्यता के कारण यथावत स्थानांतरण के पश्चात् लक्ष्य पाठक में ग्रहण कर ली जाती हैं तो (विवरणात्मक टिप्पणी आदि से) 'स्रोत पाठ कमोबेश अननुवाद्य होता है'[13] इसी उक्ति को पुष्ट करता है क्योंकि अनुवाद प्रायः संदर्भगत ही होता है। इसमें तीन तरह की स्थितियाँ -- अनुवाद पूर्व चिंतन, प्रारंभिक स्थिति तथा वास्तविक अनुवाद करने की स्थितियाँ होती हैं। इनमें सामाजिक, मूल्यपरक विशिष्ट नैतिक तथा

तकनीकी स्थितियों पर चर्चा के उपरांत तकनीकी स्थितियों को प्रक्रिया (उत्पादन) और उत्पाद (अपेक्षित) स्थितियों में विभाजित किया जाता है। अनुवादक निसंदेह लक्ष्य-समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ से निबद्ध होकर अनुवाद करता है, तदनुसार अनुवाद को अनिवार्यतः उसी सामाजिक संदर्भ में रखकर मूल्यांकित करना होगा। नाइडा का यह कथन कि उत्तम अनुवाद -- अनुवाद जैसा नहीं लगना चाहिए अथवा लिफेब्रे का यह मानना कि अनुवाद पुनर्लेखन है, इसी तथ्य पर बल देते हैं कि अनुवाद में स्वाभाविकता तथा पुनर्लेखन दोनों ही लक्ष्य पाठ में लक्ष्य सांस्कृतिकता की स्वाभाविकता व विशिष्ट संरचना में सटीकता ग्रहण कर लेते हैं।[14] समीरा मीजानी का भी यह मानना है कि सांस्कृतिक एवं अंतःसांस्कृतिक विभेद पारंपरिक रूप से समाज-संस्कृति विशेष में प्रयुक्त होने वाले शब्दों तथा प्रयुक्तियों में निहित रहता है, जिन्हें मौखिक या लिखित रूप में अनूदित करना अत्यंत दुष्कर होता है। मौनिन ने भी कोशगत (lexical) तत्त्व पर बल देकर इससे अनुवाद को उत्तम बनाने का सुझाव दिया। परंतु अनुवाद में प्रायः स्रोत भाषा के पाठक को कोशीय सीमा से बाहर सांस्कृतिक सौंदर्य से अर्थ ग्रहण करते पाया गया है। अतः केवल कोशगत तत्त्व से उसका अंतरण मुश्किल है।

नाइडा औपचारिक एवं बहु-आयामी अनुवाद की अवधारणा में से 'शब्दावली अनुवाद' (Gloss Translation) में अधिकांशतः औपचारिक समतुल्यता की संरचना इस तथ्य पर आधारित करते हैं कि शैली एवं सामग्री इस प्रकार पुनःस्थापित की जाए कि वह यथासंभव स्रोत के नजदीक हो तथा लक्ष्य भाषा के पाठक को रीति-रिवाज, परंपरा, चिंतन पद्धति और अभिव्यक्तियों को समझाने में समर्थ हो। 'सांस्कृतिक मोड़' (Cultural Turn) नाम की अवधारणा भी 1978 में उभरकर सामने आई जब एवन जोहर ने बहु पद्धति व अनुवाद पर चर्चा की; बाद में टॉरी ने भी इसे आगे बढ़ाया और बेसनेट एवं लीफब्रे ने भी इसे एक महत्त्वपूर्ण अनुवाद लक्षण के रूप में पोषित किया। 1980 के आसपास ही वरमीड़ की 'स्कूप थ्योरी' 'लक्ष्य', 'उद्देश्य' नाम से भी सामने आई। वरमीड़ ने अनुवाद में तकनीकी रूप से अनुवाद के उद्देश्य तथा अनुवाद प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया ताकि अनुवाद को क्रियात्मक रूप से सोद्देश्य बनाया जा सके। इसे ही उन्होंने Translature नाम दिया। 1984 में रीईस तथा वरमीड़ ने अपनी पुस्तक Ground work for General Theory of Translation में इस तथ्य पर बल दिया कि Translature उद्देश्य लक्ष्य से ही निर्धारित होता है। अनूदित पाठ में स्रोत पाठ व संस्कृति की सूचना का मात्र 'प्रदान' नहीं है। इसी प्रकार मार्क (1988) की नई चिंतन पद्धति Cultural word (सांस्कृतिक शब्द/शब्दावली) भी प्रकाश में आई, क्योंकि उन्होंने संस्कृति को जीवन-शैली (जो समुदाय विशेष में अभिरूपित होती है तथा अपनी विशिष्ट भाषा का अभिव्यक्ति

के रूप में प्रयोग करती है) को स्वाभाविक माना है। 'सांस्कृतिक शब्दावली' (कल्चरल-वर्ड) को स्रोत पाठक/संस्कृति के अनुरूप लक्ष्य पाठक आसानी से नहीं जान पाएगा। अतः सांस्कृतिक शब्दावली की महत्ता को समझना आवश्यक होगा। इस संदर्भ में नाइडा की अवधारणा पर आधारित न्यूमार्क का 'सांस्कृतिक वर्गीकरण'[15] महत्त्वपूर्ण है जो सांस्कृतिक शब्दों में 'विदेशी' को समझने में महत्त्वपूर्ण है। यह इस प्रकार है :

- **पारिस्थितिकीय :** भौगोलिक एवं पारिस्थितिकीय पहलू भी संस्कृति विशेष के परिचायक होते हैं। इन्हें लक्ष्य भाषा में संकेतन अथवा निरूपण से समझना कठिन है, क्योंकि ये नियमित या ज्ञात नहीं होते हैं। इनमें पेड़-पौधे, वनस्पति, वन्य जीवन, पर्वत, चोटियाँ, वायु प्रवाह तथा घाटियाँ-तलहटियाँ आदि शामिल रही हैं। फूलों की घाटी, पहाड़ों की रानी, स्वर्ग की वादी आदि केवल स्रोत पाठक को ही ज्ञात रहते हैं। वन्य जीवों के, देवी-देवताओं के नाम से स्थान व पर्वत चोटियाँ या उपयोग मात्र से फल-फूलों व वनस्पति के नाम भी कठिनता से लक्ष्य पाठक तक पहुँचते हैं। हाँगुल, नीलगाय, लकड़बग्घा आदि ऐसे ही रूप हैं।
- **उपभोज्य संस्कृति :** दैनंदिन व्यवहार में आने वाले अनेक पदार्थ भी संस्कृति का अंग बन जाते हैं। इनमें भोजन, वस्त्र, घर/कस्बे तथा यातायात आदि के साधन आते हैं। दूध, दही, घृत, मिष्ठान, चावल, जौ, नारियल आदि से निर्मित पकवान और उनके असंख्य रूपों को क्षेत्र विशेष से बाहर या विदेशी भाषा में व्यक्त करना मुश्किल है। इसी प्रकार भारत की राष्ट्रीय पोशाक, प्रांतीय पहरावे (विशेषकर दूर-दराज के क्षेत्रों में प्रचलित विविधतापूर्ण कबीलाई/जनजातीय पहरावों के प्रकारों) के नाम व उनका निरूपण कठिन होगा। इन्हें यथावत रखकर ही समझाया जा सकता है। कुर्ता, लंगोटी, सलवार, कमीज, धोती, गमछा, फेरन, लोई, घाघरा और सांस्कृतिक अवसरों पर पहनने वाले देवी-देवताओं के अनेक अभिषेक वस्त्रों को यथावत् (टिप्पण सहित) रखकर ही संप्रेषित किया जा सकता है।
- **सामाजिक संस्कृति :** इसमें काम व आराम के शब्द शामिल रहते हैं। दो घड़ी सुस्ताना, साँस लेना, कोल्हू का बैल, बेगार का बैल, बाज़ारू, लावण्य आदि शब्दों का अनुवाद लक्ष्य भाषा में यथावत् संभव नहीं है।
- **सामाजिक संगठन :** सामाजिक संगठन भी विशिष्ट संस्कृति के परिचायक शब्दों से ही अभिहित होते हैं। ऐतिहासिक महत्त्व या घटनाओं को इंगित करने वाले इस प्रकार के शब्दों को भी लक्ष्य भाषा में विवरण सहित प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। 'भारत छोड़ो आंदोलन', 'स्वराज', 'नमक आंदोलन', 'सत्याग्रह', 'फिरंगी', 'गोरा', 'स्वदेशी' आदि शब्द पूरी परंपरा के वाहक हैं। इन सबके पीछे पूरे समाज की सांस्कृतिक, धार्मिक,

कलात्मक, राजनैतिक एवं व्यवस्थात्मक सोच निहित होती है, जिसे समझे बगैर उनका अनुवाद संभव नहीं होगा।

- **आदत, स्वभाव एवं संकेतादि :** न्यूमार्क ने यह उल्लेख किया है कि आदतें-व्यवहार एवं संकेतादि भी समाज की विशिष्ट संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। अतः उन्हें समाज की संस्कृति के संदर्भ में देखना आवश्यक होगा। इसमें पाठ का उद्देश्य; पाठक की सांस्कृतिक, तकनीकी तथा भाषिक क्षमता एवं अभिरुचि; स्रोत भाषा पाठ में संदर्भ शब्दों का महत्त्व, स्वीकृत शब्दावली की उपलब्धता, शब्दों की स्वीकार्यता, शब्दों के संभावित अर्थ निरूपण आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे लैस होकर अनुवादक शब्दों को संदर्भगत रूप दे सकता है। उदाहरण के लिए, यूरोप में शराब को बनाने की विधि, भारत में देसी पेय तथा पकवान बनाने की विधियों में क्रमवार असंख्य शब्द प्रयुक्त होते हैं।

न्यूमार्क ने यह भी इंगित किया है कि अनुवाद करते समय स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में भाषाई एवं सांस्कृतिक असंख्य कोशीय दूरियों को पाटने में संघटकीय विश्लेषण की महत्ता को कम नहीं आँका जा सकता है। इसके लिए कुछ प्रविधियाँ अपनाई जा सकती हैं। जैसे :

- **स्वभावीकरण (Naturalization) :** जब स्रोत भाषा के शब्द को लक्ष्य भाषा में उसके मूल रूप में रखा जाए।
- **निर्वर्णता (Neutralization)** से भी शब्द स्तर पर भी कई बार अन्वायंतरता कर ली जाती है ताकि स्रोत भाषा के सामान्यीकृत शब्द को मुक्त शब्द में आरोपित किया जा सके।
- **विवरणात्मक एवं प्रकार्यात्मक समतुल्य :** विवरणात्मक समतुल्य किसी वस्तु के आकार-प्रकार, मान-प्रतिमान, रूप-रंग आदि का विवरण देते हैं। दो सेर, एक घड़ी, तीन मन, गजगामिनी, कदली दल, दो पल, घड़ी, श्यामला, कमल वंदना आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इसी प्रकार प्रकार्यात्मक समतुल्य संस्कृति विशेष शब्दों द्वारा स्रोत पाठ को अभिव्यक्त करते हैं। यथा 'कैट'।
- **पादटिप्पण :** यह पृष्ठ के तले में या खंड अथवा पुस्तक के अंत में अतिरिक्त सूचना हेतु दिए जाते हैं।
- **सांस्कृतिक समतुल्य :** इसमें स्रोत भाषा के सांस्कृतिक शब्द लक्ष्य भाषा में समतुल्य सांस्कृतिक शब्दों से अंतरित किए जाते हैं।
- **प्रतिपूरण :** जब अर्थ, ध्वनि प्रभाव, आबद्ध प्रभाव अथवा रूपात्मकता (metaphor) आदि के नुकसान को लक्ष्य पाठ में किसी अन्य स्थान पर प्रतिपूर्ति की जाए।
- **सांस्कृतिक प्रत्यारोपण :** हरबी और हिजिन का मानना है कि स्रोत भाषा में कुछ

अर्थ स्तर होते हैं जिनका लक्ष्य भाषा में सांस्कृतिक प्रत्यारोपण किया जा सकता है ताकि विदेशी पाठ में उन सांस्कृतिक पक्षों को स्थापित किया जा सके जिनका नुकसान हो जाता है।

- **विदेशीयता (Exoticism) :** यह अंतरण जैसा ही है। इसमें स्रोत भाषा का व्याकरण एवं सांस्कृतिक पहलू लक्ष्य भाषा में अंतरित कर दिए जाते हैं।
- **उधारी-अनुवाद (Calque केलिक) :** स्रोत भाषा के संरचनात्मक निबंध का परिवेशीय रूप से परिचित शब्दावली में अंतरित करना।
- **सांस्कृतिक शब्द-ग्रहणता :** इतिहास, विधि, सामाजिक-राजनैतिक पाठ में इस प्रकार के शब्दों (जो अनुकूलित नहीं किए जा सकते हैं) को यथावत् ले लिया जाता है। पैरोल, लैंगे आदि ऐसे ही शब्द हैं।
- **समतुल्य अभिव्यक्तियाँ :** संप्रेषणीय अनुवाद में मुहावरों, लोकोक्तियों में निबद्ध अभिव्यक्तियों आदि को संस्कृति विशेष की पृष्ठभूमि के आधार पर लक्ष्य भाषा के समतुल्य प्रभावी अभिव्यक्तियों द्वारा संप्रेषित करना।
- **सांस्कृतिक प्रत्यारोपण** में जहाँ समान भाषाई समतुल्यता न होकर समान सांस्कृतिक समतुल्यता दिखाई देती है, वहीं इसमें लक्ष्य भाषा में प्रचलित संकल्प एवं अभिव्यक्ति का आरोपण किया जाता है।

अपने विस्तृत आलेख में जी.एन. देवी ने यह बताया है कि अनुवाद केवल एक भाषिक गतिविधि नहीं, यह एक सांस्कृतिक कार्य है। यह सार्वजनीन, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक नहीं हो सकती है तथा यह अपने इतिहास में सांस्कृतिक धरोहर से अनुप्राणित होकर विशेष सांस्कृतिक और भाषाई आधार पर अपनी अवधारणा की निर्मिती करती है; जो वस्तुतः अनुवादक को 'स्वांतः सुखाय, विश्व हिताय' की भावना से अनुप्रेरित करती है। अनुवाद की भाषिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गइराई के प्रति अज्ञानता और असंवेदनशीलता से जहाँ संवाद भंग, अवरोध तथा घातक दुष्परिणाम हो सकते हैं वहीं ये राष्ट्रीय, वैश्विक, वैयक्तिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करते हैं। साथ ही, ये इतिहास संस्कृति के वाहक और पोषक दायित्व का निर्वहन भी नहीं करते हैं। अनुवादक ऐसी कई भूलें कर देते हैं जिससे आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। अतः अनुवादक को स्रोत भाषा की संस्कृति, विशिष्ट अर्थ, रूढ़िगत अर्थ तथा सामाजिक-भौगोलिक मान्यताओं, विश्वास, रिश्ते-नाते, खानपान, पहनावे और पूरी जीवन-शैली से जुड़ी अंतरंग अभिव्यक्तियों को दृष्टिगत कर उसे समझना अनिवार्य है। अनुवादक को अनुवाद करते समय लक्ष्य भाषा के सांस्कृतिक शब्दों के संदर्भगत अर्थ, मुहावरे तथा सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक परिदृश्य में नित-परिवर्तनशील विचारधारा, चिंतनशीलता तथा संवेदनशीलता के अनुरूप, पाठक की अपेक्षा के अनुरूप, उसकी आकांक्षाओं एवं

उद्देश्यों की आपूर्ति को ध्यान में रखते हुए अत्यंत दुष्कर कार्य को पूरा करना होता है। स्रोत भाषा के मुहावरे तथा संस्कृति में निहित तत्त्वों की तथ्यपरक पहचान और अवगाहन अनुवादक के अनुभव तथा निष्ठा को व्यक्त करते हैं।

अनुवादक को सदैव एक प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। पहले लेखक को रचना और अपनी समझ के मध्य, तत्पश्चात् लक्ष्य पाठक और परिवेश की मान्यताओं एवं परिवेशीय उपेक्षाओं के साथ। और फिर उसे सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। अतः यह प्रतिरोध व सामंजस्य का अनोखा संघर्ष अनुवादक के लिए तलवार की धार पर चलने के समान है।[16] राजनाथ इस प्रतिरोध को नकारना नहीं क्रिटीकिंग मानते हैं क्योंकि रिसेप्शन (पाठक द्वारा ग्रहीत अर्थ) या संप्राप्ति और पाठक आपस में निकट सहयोगी क्रियाएँ हैं। यह संप्राप्ति अत्यंत सूक्ष्म पाठन (Micro reading) पर आधारित होती है। एडवर्ड सईद की व्याख्या के आधार पर वे लिखते हैं -- 'रिसेप्शन एक नए तरह का पाठन होता है, जिसमें प्रतिरोध का महत्त्वपूर्ण अंश होता है जिसके बिना पाठक उस गुप्त अर्थ को सामने नहीं ला सकता है। पाठक और जिस 'कुछ' का पाठन करता है; दोनों एक निश्चित काल स्थान में स्थित होते हैं।[17] अनुवादक को इस 'पाठक और कुछ' का निश्चित काल स्थान को भी अपनी अनुवाद क्रिया में सामने रखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसे रचना के संवेदनात्मक ज्ञान और उस द्वंद्ववाद -- आभास और सार के द्वंद्वात्मक उत्कर्ष में देखने और समझने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि वह रचना, सीखने और रूपांतरण की प्रक्रिया से बाहर नहीं है।[18] निश्चित रूप से अनुवादक को एक सौंदर्यात्मक, कलात्मक, संवेदनात्मक एवं आलोचक होना अपेक्षित है। उसे अर्थ ग्रहण, अर्थ-निर्वहन की मूल शर्तों, स्रोतों और प्रवाहों की जाँच-पड़ताल, बहुलत्व में एकत्व की समझ तथा प्रकृति में 'विशिष्टि' को उभारने के बारे में पर्याप्त और समुचित ज्ञान होना चाहिए। जाहिर है अनुवादक समाज तथा उसमें घटित हुई या वर्तमान में घटित हो रही परिस्थितियों, मूल्यों तथा निहित मान्यताओं की न तो उपेक्षा कर सकता है न ही उनका विखंडित रूप से विवरण प्रस्तुत कर सकता है।

❑

संदर्भ

1. ट्रांसलेशन, कम्युनिटी, यूटोपिया -- दि ट्रांसलेशन स्टडीज़ रीडर, सं. लॉरिस वेनुटी, रूटलेज (2001), पृ. 469
2. जेंडर इन ट्रांसलेशन, कल्चरल आईडेंटिटी एंड इट्स पॉलिटिक्स ऑफ ट्रांसलेशन, शेरी सिमॉन, रूटलेज, लंदन, 2008
3. सुरेश सिंहल, अनुवाद संवेदना और सरोकार, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
4. जॉन टीन ब्रेवर : द रोल ऑफ कल्चर इन सक्सेसफुल ट्रांसलेशन, लिटरेचर एंड

ट्रांसलेशन, सं. प्रमोद तालगिरी; एस.वी. वर्मा, पॉपुलर प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 1988

5. प्रमोद तालगिरी, दी प्रॉब्लम ऑफ कल्चरल रीकन्टैक्सच्युलाइजेशन इन लिटरेरी ट्रासलेशन, लिटरेचर इन ट्रांसलेशन, संपा.: प्रमोद तालगिरी, एस.वी. वर्मा, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1988।
6. हतीम वासिल, मुंडे जेरेमी, (2006) ट्रांसलेशन एन एडवॉस्ड रिसोर्स बुक, रूटलेज, न्यूयार्क
7. जॉन टीन ब्रेवर : द रोल ऑफ कल्चर इन सक्सेसफुल ट्रांसलेशन, लिटरेचर एंड ट्रांसलेशन, सं. प्रमोद तालगिरी; एस.वी. वर्मा, पॉपुलर प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 1988, पृ. 1
8. सोवोन सान्याल, ट्रांसलेशन इज ए साइट फॉर कल्चरल रिजिस्टेंस : केस स्टडी ऑफ पोर्टगीज़ गोआ, सोसियो कल्चरल एप्रोचिज़ टू ट्रांसलेशन, सं. जे. प्रभाकर राव, जीन पीटर्स, सम्मेलन पत्र संकलन : ICSCAT - 2010 एक्सेल इंडिया पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
9. जसवीर जैन, प्रॉब्लम ऑफ कल्चरल ट्रासफेरेंस; लिटरेचर इन ट्रांसलेशन, सं. प्रमोद तालगिरी, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई 1980, पृ. 2
10. त्रिवेणी-सी, कल्चरल एलिमेंटस इन ट्रांसलेशन -- द इंडियन परस्पेक्टिव, ट्रांसलेशन डायरेक्टरी डॉट कॉम
11. यूजीन ए. नाइडा, ट्राडुसेरा सेनसुरिलॉर, आसि, इंस्टीट्यूशनल यूरोपियन पब्लिशिंग हाउस -- पहली बार चैलेंजिज़ ऑफ यूरोपियन इंटीग्रेशन में प्रकाशित, रिसोप्रिंट पब्लिशिंग हाउस, रोमानिया (2004), पृ. 786-791
12. यूजीन ए. नाइडा, टुवर्ड्स ए साइंस ऑफ ट्रांसलेटिंग, ई.जे. ब्रिल, लीडन, नीदरलैंड, 1964, पृ. 11
13. जे.सी. कैटफोर्ड, ए लिंग्विस्टिक थ्योरी ऑफ ट्रांसलेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1965, पृ. 93
14. कांडी कितामुर किट्टफाद, translatordirectory.com/articles/1507.php
15. पीटर न्यूमार्क, ए टेक्स्ट बुक ऑफ ट्रांसलेशन, तेहरान, 1988, पृ. 94-103

16-17. राजनाथ, एडवर्ड सईद, प्रतिरोध और सामंजस्य, बहुवचन-6, 22 जुलाई-सितंबर 2009, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, 2009 (पृ. 208-222)

18. राजेश्वर सक्सेना, सीखने और रूपांतरण की प्रक्रिया में होने का अर्थ-प्रैग्मैटिज्म, भाषा का मानसिकतावादी मोड़ और भाषा वैज्ञानिक मोड़, बहुवचन-22, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा-2009, पृ. 25-235

डॉ. राजेंद्र प्रसाद पांडेय

भारतीय कालजयी साहित्य का वैश्विक अनुवाद

भारत अपनी संपदा और वैभव के कारण विभिन्न आक्रमणकारियों और राजनीतिक महत्वाकांक्षी देशों और जातियों के लोभ और आकर्षण का केंद्र रहा है, किंतु भारत की संस्कृति एवं यहाँ का साहित्य भी कम महत्वपूर्ण और आकर्षक नहीं रहा है। जो भी भारत के संपर्क में आया, इसके साहित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। भारत में प्राचीनकाल एवं मध्यकाल में कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कालजयी रचनाएँ लिखी गईं जिनका वैश्विक स्तर पर अनुवाद हुआ और विश्व के अनेक देश उनको अपनी भाषा और साहित्य के साथ तुलनात्मक रूप से समझने के प्रयत्न करने लगे।

यहाँ कुछ प्रमुख भारतीय कालजयी रचनाओं के परिचय के साथ उनके वैश्विक अनुवाद के प्रयासों की चर्चा अपेक्षित है। लेकिन उससे पहले यह विचार करना उपयुक्त रहेगा कि 'कालजयी साहित्य' और 'वैश्विक अनुवाद' से क्या तात्पर्य है?

कालजयी साहित्य का आशय

साधारण अर्थों में हम कालजयी साहित्य (क्लासिकल लिटरेचर) उस रचना को कहते हैं जो अपने देश-काल का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक हो जाए, अपने रचनाकाल का अतिक्रमण कर सार्वकालिक हो जाए। 'क्लासिक' से मूलतः हम 'प्राचीन साहित्य' का अर्थ ग्रहण करते हैं। 'क्लासिक' (Classic) शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'क्लासिक्स' से हुई है, जिसका अर्थ है -- नागरिकों की उच्चतम श्रेणी से संबंधित। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि क्लासिक रचनाएँ श्रेष्ठ और कालजयी दोनों होती हैं। यद्यपि 'क्लासिक भाषा' से अभिप्राय उस भाषा से लिया जाता है जो अब बोली नहीं जाती, किंतु यदि इसका अर्थ विस्तार करें तो इसे प्राचीन भाषाओं के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। भारत में संस्कृत के साथ तमिल को भी क्लासिक भाषाओं के अंतर्गत शामिल किया गया है। मोना बेकर द्वारा संपादित 'रूटलेज एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज'

में 'क्लैसिकल टेक्स्ट्स' (Classical Texts) में प्राचीन यूनानी एवं लैटिन साहित्य की रचनाओं को इस कोटि के अंतर्गत माना गया है।

क्लासिकल साहित्य की एक अन्य विशेषता, एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, यह है कि वह एक सतत एवं मौखिक परंपरा के रूप में विद्यमान है। होमर की रचनाएँ अपनी मौलिक परंपरा के कारण अनुवादक को चुनौती की तरह भी लगती है। लेकिन यह स्पष्ट है कि 'क्लासिक' की अवधारणाएँ भी बदलती रही हैं।[1] 'पाठ' (text) की परिवर्तनशीलता के कारण अनुवाद की समस्या या चुनौती तो सामने आती ही है। अनुवादक को यह अवसर भी मिल जाता है कि वह मूल कृति का अनुकूलन (Adapation) भी कर सके। भारतीय संदर्भ में देखें तो रामायण और महाभारत के अनुवादों की कहानी यही है।

इसी प्रकार ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार 'क्लासिक' उन लेखक, कलाकार या कलाकृतियों को कहा जाता है जो उच्च कोटि की है, कालजयी है और कालातीत मूल्यों से जुड़ी है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि क्लासिक या कालजयी साहित्य से अभिप्राय उस कृति से है जो श्रेष्ठ और कालातीत हो तथा प्राचीन भी हो। यद्यपि प्राचीनता की यह विशेषता अनिवार्य नहीं है क्योंकि आधुनिक कृतियाँ भी कालजयी हो सकती हैं। तब क्लासिक साहित्य से अभिप्राय 'श्रेष्ठ तथा कालजयी साहित्य' से ही हो सकता है।

वैश्विक अनुवाद से तात्पर्य

वैश्विक अनुवाद (Global Tranalstion) से अभिप्राय विश्व की विभिन्न भाषाओं के बीच अनुवाद से है। 'भारतीय कालजयी साहित्य के वैश्विक अनुवाद' का अर्थ है -- भारतीय साहित्य की श्रेष्ठ और कालजयी कृतियों का विश्व की विभिन्न प्रमुख भाषाओं में अनुवाद अथवा दुनिया के प्रमुख देशों में अनुवाद। वैश्विक अनुवाद का अर्थ यह नहीं ग्रहण किया जाना चाहिए कि विश्व के सभी या अधिकांश देशों या भाषाओं में अनुवाद। इसका अर्थ यह है कि यदि विश्व की कुछ प्रमुख भाषाओं एवं उन भाषा-भाषी देशों में अनुवाद हुआ है तो उसे 'वैश्विक अनुवाद' कहा जा सकता है क्योंकि वैश्विक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय चलन की भाषाएँ कुछ ही हैं और परस्पर संपर्क तथा अंतःक्रिया की दृष्टि से सभी भाषाओं का साहित्य एक-दूसरे के संपर्क में नहीं आ पाया है।

भारतीय कालजयी साहित्य का वैश्विक अनुवाद

भारतीय कालजयी साहित्य का वैश्विक अनुवाद सदियों से हो रहा है। बौद्ध साहित्य के जापानी तथा चीनी भाषा में अनुवाद के प्रमाण बहुत पहले से मिलते हैं। प्राचीन इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि व्यापार के क्षेत्र में भारत विभिन्न देशों

से जुड़ा हुआ था। समुद्री मार्ग से व्यापार की परंपरा रही है। 'सिल्क रूट' भारतीय व्यापार का प्रमुख मार्ग था। इस व्यापारिक आदान-प्रदान के साथ-साथ ज्ञान एवं साहित्य के क्षेत्र में भी आदान-प्रदान हुआ। प्राचीनकाल में भारतीय इतिहास के जो विदेशी साक्ष्य मिलते हैं वे चीनी तथा यूनानी पर्यटक इतिहासकारों द्वारा लिखे गए इतिहास के दस्तावेज 'यात्रा वृत्तांत' से अधिक कहे जा सकते हैं। ह्वेनसांग, फाह्यान के नाम हम जानते ही हैं। हर्षकालीन राज व्यवस्था के वर्णन के साथ-साथ साहित्य का वर्णन हमें मिलता है। मेगस्थनीज इत्यादि के वर्णन भी इस दिशा में उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं।

व्यापारिक स्तर पर भारतीय साहित्य का वैश्विक अनुवाद गेटे (Goethe) (1749-1812) की 'विश्व साहित्य की अवधारणा' के विकास के साथ ही होता है। जब उन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में, गेटे ने 1827 में अपने युवा शिष्य पीटर एकर मॉन से चर्चा करते हुए कहा कि 'राष्ट्रीय साहित्य' अब अर्थहीन हो गया है और 'विश्व साहित्य का युग' आ गया है। भारतीय साहित्य के वैश्विक अनुवाद में प्राच्यविदों (Orientalists) तथा भारतीय अध्येताओं (Indologists) की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इनमें मैक्समूलर तथा विलियम जोंस के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। कहना न होगा कि भारतीय साहित्य के अनुवादों के पीछे उपनिवेशवादी एजेंडा भी था और अनुवादों की एक राजनीति भी। लेकिन इसके बावजूद यह एक तथ्य है कि भारतीय साहित्य को केंद्रीयता प्राप्त हुई, वह चर्चा और विवेचन का विषय बना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य के अनुवाद की परंपरा को औपनिवेशिक काल में बहुत बल मिला। इसका निहित उद्देश्य से अर्थ-निर्धारण भी हुआ और उसकी मनमानी तथा विकृत व्याख्याएँ भी हुईं। किंतु भारतीय कालजयी साहित्य विश्व-पटल पर प्रमुखता से पिछले तीन सौ वर्षों के भीतर ही सामने आया। यद्यपि यह कहना भी उतना ही सही होगा कि भारतीय मानस, साहित्य तथा संस्कृति को गलत ढंग से प्रस्तुत करने की मानसिकता भी इस दिशा में कार्य कर रही थी। तेजस्विनी निरंजना तथा गणेश देवी जैसे विचारकों ने अनुवाद की इस राजनीति के निहितार्थ को गहराई से रेखांकित किया है।

संस्कृत साहित्य का अनुवाद

'भारतीय कालजयी साहित्य' की अवधारणा का मूलाधार संस्कृत साहित्य ही है। संस्कृत न केवल विश्व की एक प्राचीन भाषा होने के कारण 'क्लासिक भाषा' की श्रेणी में आती है अपितु उसमें रचित महत्वपूर्ण कालजयी कृतियाँ विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस दृष्टि से संस्कृत में लिखित साहित्य अपनी गुणवत्ता और साहित्यिक वैशिष्ट्य के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। सच तो यह है कि प्राचीन भारत और उसकी संस्कृति को समझने का रास्ता संस्कृत में 'रचित' साहित्य से ही होकर जाता है। वैदिक एवं

लौकिक संस्कृत में रचित कृतियाँ विश्व के आकर्षण का केंद्र बनीं। मैक्समूलर हो या गेटे अथवा रोम्यां रोला, इनकी भारत व्याकुलता या भारत राग के जो भी छिपे एजेंडे रहे हों, इनका कृतियों से प्रभावित होना ही इसका प्रमाण है कि इन्हें भारतीय साहित्य श्रेष्ठ एवं मूल्यवान लगा। संस्कृत में इतनी अधिक संख्या में श्रेष्ठ रचनाएँ लिखी गईं कि यदि उनकी सूची बनाएँ तो वे शताधिक होंगी। जाहिर है उन सबके अनुवादों का विवरण देना, खोज पाना और इस आलेख में प्रस्तुत करना न तो आवश्यक है और न ही अभीष्ट। भास, कालिदास, अश्वघोष, माघ, दंडी, भवभूति, बाणभट्ट जैसे अनेक रचनाकारों की रचनाएँ विश्व साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के समतुल्य हैं। रामायण और महाभारत तो विश्व की महानतम रचनाओं में निर्विवाद रूप से गिनी जा सकती है। इस दृष्टि से संस्कृत में रचित साहित्य उत्कृष्टता तथा कालजयिता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनके वैश्विक अनुवाद से परिचित होना हमारे लिए आवश्यक है।

रामायण के वैश्विक अनुवाद

भारतीय कालजयी साहित्य 'रामायण' के केवल भारत की ही विभिन्न भाषाओं में नहीं, बल्कि विश्व की अनेक भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं। 'रामायण' सहित भारतीय साहित्य के वैश्विक अनुवाद में प्राच्यविदों की विशेष भूमिका रही। हालाँकि भारत विद्या या प्राच्य विद्या को प्रमुखता से सामने लाने तथा उसे अनुवाद के माध्यम से पाश्चात्य जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का एक उपनिवेशवादी एजेंडा भी था। तेजस्विनी निरंजना के आलेख 'ट्रांसलेशन, कोलोनियलिज्म एंड राइस ऑफ इंग्लिश' के अनुसार बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी से ही यूरोपियन प्राच्य विद्या का एजेंडा और अध्ययन गति पकड़ता था, वहीं से संचालित होता था। वैसे तो मैकाले से लेकर विलियम जोंस और जेम्स मिल तथा विलियम केरी और विलियम एच.एच. विल्सन तक सभी का एक उपनिवेशवादी एजेंडा कहा जा सकता है। यहाँ तक कि मैक्समूलर और गेटे की नीयत पर भी शक किया जाता है किंतु इनके विचारों में भारत, यहाँ की जनता और यहाँ के ज्ञान को लेकर मात्रात्मक भेद तो हैं ही।

विलियम केरी उसी बंगाल एशियाटिक सोसायटी से जुड़े थे। केरी ने अनेक कृतियों के अनुवाद किए तथा शब्दकोशों के निर्माण एवं संपादन कार्य में महत्वपूर्ण योगदान किया। 1802 के दौरान इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने मराठी, संस्कृत तथा तेलंगाना भाषा के व्याकरण भी लिखे। उन्होंने वेदों के अनुवाद की अपेक्षा 'रामायण' का अनुवाद करने का चुनाव किया। केरी के इस चुनाव का आधार इस भारतीय कालजयी कृति की लोकप्रियता था। यह लोक परंपरा के अनुक्रम में थी। असल में एशियाटिक सोसाइटी ने केरी के सुझाव पर भी रामायण के अनुवाद को स्वीकृति दी और इसके

साथ ही सांख्य दर्शन के साथ वेदांत के अनुवाद का भी कार्य स्वीकृत किया। फोर्ट विलियम कॉलेज में ही केरी संस्कृत और हिंदी के अध्यापक थे।[2]

उपनिवेशवादी अनुवादों का अभीष्ट जो भी हो, इससे भारतीय साहित्य का प्रचार-प्रसार बहुत हुआ। भारत के साथ व्यापारिक रिश्तों में बँधे देशों में रामायण और रामकथा का प्रचार किसी न किसी रूप में था, किंतु इस कृति का अनुवाद और रूपांतरण विश्व स्तर पर आगे चलकर ही हुआ। भारतीय साहित्य एवं अनुवाद के अध्येता ए.के. रामानुजन ने 300 रामायणों की बात की है। अधिकांश देशों और भाषाओं में 'रामायण' के अपने-अपने संस्करण मौजूद थे। भारत में ही वाल्मीकि कृत 'रामायण' के अनेक रूप अनुकूलन प्रक्रिया (Adaptation and Appropriation) के माध्यम से सामने आए हैं। हिंदी में तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' से लेकर बांग्ला में कृतिवास रामायण, कंबन के रामायण सहित अनेक रूप मौजूद हैं।

'रामायण' के विभिन्न अनुवादों या रूपांतरों या अनुकूलन की एक विशेषता यह भी है कि स्थान-काल के अनुसार उसका स्वरूप ही नहीं अपितु उसकी अंतर्वस्तु भी बदल जाती है। रामानुजन ने रामकथा और रामायण की बहुलता को व्यक्त करते हुए एक कहानी के माध्यम से बताया कि हनुमान एक बार किसी अज्ञात स्थल पर पहुँच गए। राम की मुद्रिका को पहचानने के लिए उन्हें कहा गया और जब असंख्य मुद्रिकाओं में से वे वास्तविक मुद्रिका को नहीं पहचान सके तो उन्हें बताया गया कि जिस तरह से अनेक मुद्रिकाएँ हैं उसी तरह से अनेक राम हैं और उतने ही रामायण।[3] उनका चर्चित और विवादास्पद निबंध 'Three hundred Ramayana's' रामायण के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालता है।

जैसा कि पहले संकेत किया गया रामायण के विभिन्न 'अनुवादों' (यहाँ अनुवाद का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है) में रामकथा का स्वरूप भी बदलता रहा है। कहीं अहिल्या प्रसंग में बदलाव है तो कहीं शंबूक-वध के प्रसंग में अंतर है और कहीं कैकेयी के चरित्रांकन में अंतर दिखाई देता है। यदि हम विभिन्न अनुवादों की चर्चा करें तो प्रमुख अंग्रेजी अनुवादों में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी कृत अनुवाद को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। वस्तुतः यह अनुवाद न होकर एक स्वतंत्र कृति है। अंग्रेजी के अन्य प्रमुख अनुवादों में डॉ. रमेश चंद्र दत्त कृत अंग्रेजी अनुवाद महत्वपूर्ण है।

मुगलकाल में फारसी में भी रामायण के अनुवाद हुए। उस दौरान रामायण सहित अन्य संस्कृत कालजयी रचनाओं में अनुवाद करवाए गए। अब्दुल कादिर बदायूँनी ने शासन के दबाव में अनमने ढंग से इसका अनुवाद किया। शेख सैदुल्ला मसीह कृत 'रामायण-ए-मसीह' (1899) तथा मोहर सिंह कृत अनुवार (1890) का उल्लेख इस संदर्भ

में किया जा सकता है। मोहर सिंह रणजीत सिंह की सेना में शामिल थे।

कुछ अन्य भाषाओं में अनुवादों का उल्लेख करें तो हंगेरियन भाषा में वाल्मीकि 'रामायण' का जोसेफ वेकेरती (1977) ने अनुवाद किया जबकि इंडोनेशिया में 'रामायण' काकाबीन काव्यात्मक रूप में वहाँ के महाकवि युगीश्वर ने 9वीं शताब्दी में ही लिखा था। इसे संस्कृत विद्वान राजेंद्र मिश्र संस्कृत और स्थानीय जबि (मलय) का मिश्रित (blended) रूप मानते हैं। स्पेनिश में भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' का अनुवाद प्रो. जून मुगेल डी. मोरा ने किया। प्रो. जया स्टेटस ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद थाई भाषा में किया। इसी प्रकार रामायण के अरण्य कांड का अनुवाद इटैलियन भाषा में सी. डेला कासा ने किया।[4]

महाभारत के वैश्विक अनुवाद

रामायण की भाँति 'महाभारत' भी भारतीय कालजयी साहित्य होने के साथ-साथ विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। वेदव्यास कृत यह रचना लौकिक संस्कृत में लिखी गई है। महाभारत की लोकप्रियता का कारण इसका समकालीन जीवन संदर्भ से तादात्म्य भी है। रामायण में जहाँ एक आदर्श जीवन प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न है वहीं महाभारत व्यावहारिक जीवन धरातल पर रचित महाकाव्य है। यह मानव जीवन के इतना निकट कि हर व्यक्ति उसमें अपना-अपना अक्स देख सकता है। उसमें संपत्ति-विवाद से लेकर स्त्री के प्रश्न, युद्ध की अनिवार्य परिस्थिति का निर्माण करते हैं किंतु सत्य की लड़ाई मानी जाने वाली कुरूक्षेत्र की लड़ाई केवल श्वेत-श्याम वर्णो में विभाजित नहीं की जा सकती। यही कारण है कि महाभारत की व्याख्या और पुनर्व्याख्या निरंतर जारी है।

जिस प्रकार, रामायण के संदर्भ में कहा जा सकता है कि उसके अनेक संस्करण और रूप हैं (जिनमें अपने स्थानीय लोक परिवेश, विश्वास और मान्यताओं के अनुरूप संशोधन परिवर्तन और परिवर्धन अनुवाद के स्तर पर किए गए हैं, उसका अनुकूलन किया गया और उसकी प्रेरणा के आधार पर पुनर्रचना भी की गई) उसी प्रकार, महाभारत के संदर्भ में भी यह बात कही जा सकती है कि उसका कोई एक निश्चित पाठ नहीं है। मूल रचना का आधार ग्रहण कर अनेक अनुवाद भी हुए, जिन्हें पुनर्रचना कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा। अनुवाद के संदर्भ में एंद्रे लेफेवेयर जिसे Rewriting कहते हैं, 'रामायण' और 'महाभारत' के अनुवादों के संदर्भ में यह बात पूर्णतः लागू होती है। अनुवाद में एक अन्य शब्द भी प्रचलित है जिसे अनुसृजन (Transcreation) कहा जाता है।

महाभारत के अनुवादों के विषय में एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय बात यह है कि इसके अधिकांश अनुवादों में मूल कृति का संपूर्ण या समग्र अनुवाद नहीं हुआ है। इसके संक्षिप्त संस्करण ही प्रकाशित हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि रामायण की तुलना

में 'महाभारत' का आकार बड़ा है। इस वृहदाकार कृति में 10,000 से अधिक श्लोकों की रचना हुई है। महाभारत में कुल 18 पर्व हैं। 'महाभारत' का एकमात्र अंग्रेजी अनुवाद (जो सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है) -- है कृष्ण मोहन गांगुली कृत अंग्रेजी अनुवाद। इसका प्रकाशन 1883 से 1896 के बीच हुआ। यह अनुवाद ऑनलाइन भी उपलब्ध है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि इसे विश्वसनीय अनुवाद भी कहा जा सकता है क्योंकि मूल पाठ के प्रति निष्ठा रखते हुए अनुवादक न तो अपनी ओर से कुछ जोड़ना चाहता है और न ही घटाना।

महाभारत के अंग्रेजी अनुवादों में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयास शिकागो विश्वविद्यालय का है। उन्होंने महाभारत का गद्यात्मक रूप में अनुवाद किया। इस अनुवाद की भी विशेषता यह है कि यह 'महाभारत' का अविकल और समग्र अनुवाद है। ए.जे.बी. बुइटनेन (Buitenen) द्वारा किए गए इस अनुवाद के प्रथम खंड प्रकाशित हो चुके हैं जबकि यह योजना अभी जारी है। इसी प्रकार न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय प्रेस की 'क्ले संस्कृत लाइब्रेरी' से किए जा रहे संपूर्ण महाभारत के अनुवाद के 15 खंड प्रकाशित हो चुके हैं जबकि महाभारत के इस अंग्रेजी अनुवाद की परियोजना 32 खंडों में संपूर्ण कार्य को प्रकाशित करने की है। अनुवादक पी. लाल इसे 'अनुसृजन' (Transcreation) कहते हैं। महाभारत के अंग्रेजी अनुवादों में रमेश चंद्र दत्त के अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। यह अनुवाद 1898 में प्रकाशित हुआ था। इसमें काव्यात्मक अनुवाद किया गया है, किंतु यह महाभारत का संक्षिप्त संस्करण ही है। संपूर्ण महाभारत का इसमें अनुवाद नहीं किया गया। महाभारत के संक्षिप्त संस्करण के रूप में अंग्रेजी के कुछ महत्वपूर्ण अनुवादों में रमेश मेनन, विलियम बक, आर.के. नारायण, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी, कृष्ण धर्मा, जॉन डी. स्मिथ तथा शरोन मास (Sharon Mass) कृत अनुवादों का उल्लेख किया जा सकता है।

औपनिवेशिक शासनकाल में उपनिवेशवादी परियोजना के अंतर्गत 'रामायण' की ही भाँति 'महाभारत' का भी अनुवाद किया गया। विलियम केरी ने 'रामायण' की ही तरह 'महाभारत' का भी अनुवाद किया। महाभारत के सुप्रसिद्ध अंश 'भगवतगीता' का अंग्रेजी अनुवाद चार्ल्स विल्किंस ने किया। उल्लेखनीय है कि विल्किंस ने ही कलकत्ता में पहले प्रिटिंग प्रेस की स्थापना की। उपनिवेशवादी एजेंडे के तहत हुए अनुवादों के विषय में हमारी धारणा बदल चुकी है। इन अनुवादो को अब हम अंग्रेजों की राजनीति तथा उनके निहित स्वार्थ के रूप में भी देखते हैं। मैक्समूलर ने जहाँ वेदों तथा उपनिषदों का अनुवाद किया वहीं 'India : What Can it teach Us?' जैसी रचनाओं के माध्यम से भारत के गौरव का वर्णन किया, जिसकी प्रशंसा किए बिना महात्मा गांधी और विवेकानंद भी न रह सके। लेकिन जेम्स मिल की। 'History of British India' में जिस तरह

भारत की संस्कृति तथा साहित्य को अप्राकृतिक बताया वह उनके साहित्य ज्ञान की अपेक्षा उनकी दृष्टि को अधिक अभिव्यक्त करता है। उल्लेखनीय है कि न तो जेम्स मिल कभी भारत आए न ही मैक्समूलर। अतः भारत के यथार्थ को जाने बिना इसके इतिहास और साहित्य की व्याख्या भी प्रश्न के दायरे में आई। ईसाई मिशनरियों का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान था। जो भी हो पर यह बात रेखांकित तो की ही जानी चाहिए कि उन्होंने हमारे साहित्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया।[5]

जैसा 'रामायण' के प्रसंग में उल्लेख हुआ है, महाभारत का भी फारसी अनुवाद अकबर के शासनकाल में हो चुका था। अब्दुल कादिर बदायूँनी ने इसका भी अनुवाद किया था। यह अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1761-1761) में हुआ था। दारा शिकोह ने उपनिषदों के साथ-साथ महाभारत का भी अनुवाद किया। अन्य भाषाओं में महाभारत के अनुवाद की चर्चा करें तो पोलिश भाषा में डॉ. एम. कुडेल्शका (M. Kudelska) ने 'भगवद्‌गीता' तथा उपनिषदों का अनुवाद किया। प्रो. जे. सेचसे (J. Sachse) ने भगवदगीता सहित महाभारत का अनुवाद किया। थाई में 'महाभारत युद्ध' नाम से एन. आर. नियोम (N.R. Niyom) ने अनुवाद किया। हरिदत्त शर्मा ने संस्कृत से थाई भाषा में 'महाभारत' का अनुवाद किया।

कालिदास की रचनाओं के वैश्विक अनुवाद

उपनिवेशकालीन अनुवादों में विलियम जोंस द्वारा कालिदास की प्रसिद्ध रचना 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद अत्यधिक चर्चित रहा। उन्होंने इस कृति का 1789 में अनुवाद किया। गेटे भी मैक्समूलर की भाँति प्रेम से व्याकुल थे और भारत के गौरव गान में संलग्न थे। 'शकुंतला' नाम से उन्होंने एक कविता भी लिखी। इस व्यामोह का औपनिवेशिक यूरोपीय परिप्रेक्ष्य भी है जिसकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है। जोंस का 'शकुंतला' का अनुवाद इसलिए भी चर्चित रहा क्योंकि उन्होंने 'मनुस्मृति' का भी अनुवाद किया। उनके शकुंतला के अनुवाद का शीर्षक था -- Shacontala or the Fatal Ring : An Indian Drama.

कालिदास की अन्य रचनाएँ भी व्यापक स्तर पर अनूदित हुईं। एच.एच. विल्सन ने 'मेघदूत' का अंग्रेजी अनुवाद किया। यह अनुवाद उनके द्वारा संकलित 'Dramatic Literature of Hindoos' में शामिल है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद के अतिरिक्त शूद्रक की रचना 'मृच्छकटिकम्' का अंग्रेजी अनुवाद मोनियर विलियम्स (Monier Williams) तथा राउडर (Ryder) ने किया जो 'Genius of the oriental theatre' नाम से मेंटर बुक न्यूयॉर्क से 1966 में प्रकाशित हुआ।[6]

'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का फ्रांसीसी भाषा में बांग्ला के आधार पर अनुवाद किया जे. सेचसे ने। उन्होंने 'मेघदूतम्' का पोलिश भाषा में भी अनुवाद किया। हरिदत्त शर्मा

ने अभिज्ञानशाकुंतलम् का मूल संस्कृत से थाई में अनुवाद किया। आज कालिदास की रचनाएँ अनुवाद के माध्यम से विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में पहुँच चुकी हैं।

अन्य कालजयी रचनाओं के वैश्विक अनुवाद

भारतीय कालजयी साहित्य संख्या की दृष्टि से भी अधिक है। गुणवत्ता की दृष्टि से भी अनेक रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। भवभूति, कल्हण, भास, बाणभट्ट, अश्वघोष, भारवि, माघ, विशाखदत्त जैसे रचनाकार न केवल भारतीय साहित्य अपितु विश्व-साहित्य के महान रचनाकार हैं। यहाँ इनकी प्रमुख रचनाओं और उनके अनुवादों का उल्लेख उचित होगा।

जीन फ्रांसुआँ कोएसिस पोयस (Jean Franscois cois Pous) ने 'अमरकोश' का लैटिन भाषा में अनुवाद किया। अश्वघोष की रचना 'बुद्धचरित' का अंग्रेजी अनुवाद ई.एच. जॉनस्टन ने किया, जिसका प्रकाशन 1937 में हुआ। बाणभट्ट की रचना 'हर्ष चरित' का अंग्रेजी अनुवाद कॉवेल एवं थॉमस ने किया, जिसका प्रकाशन रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लंदन ने 1897 में किया। बाणभट्ट की एक अन्य रचना 'कादम्बरी' का अंग्रेजी अनुवाद सी.एम. रिडिंग ने किया, जिसका प्रकाशन भी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन ने 1896 में किया। भास की रचनाओं का अनुवाद पंजाब विश्वविद्यालय ने ओरियंटल पब्लिकेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन से 1930 में प्रकाशित किया जिसका अनुवाद वुडनर एवं सरूप ने 'Thirteen Trivandrum Plays attributed to Bhasa' शीर्षक से किया था। भवभूति की रचना 'उत्तर रामचरितम्' का फ्रेंच अनुवाद सी. स्टेच्ली ने किया जो 1885 में Lexoux पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसी रचना का एक और फ्रेंच अनुवाद N. Stchoupak ने किया जिसका प्रकाशन पेरिस से ही 1935 में हुआ। हर्ष के 'नैषधचरित' का अनुवाद के.के. हंडगुरि (K.K. Handiguri) ने किया (जो पूना से 1956 में प्रकाशित हुआ) यह अंग्रेजी में किया गया अनुवाद था। हाल कवि की रचना 'गाहा सतसई' (गाथा सप्तसती) का जर्मन भाषा में अनुवाद 1870 में प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक थे -- वेवर (Weber)। गुणाढ्य की रचना 'बृहत् कथा' का 'श्लोक संग्रह' शीर्षक से फ्रेंच में अनुवाद लैकौरे (Lacore) ने किया जो 1908 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। विशाखादत्त के नाटक 'मुद्रा राक्षस' का अंग्रेजी अनुवाद के.एच. ध्रुव ने किया, जो 1930 में पूना से प्रकाशित हुआ। विद्याकर के 'संस्कृत रत्नकोश' का अंग्रेजी अनुवाद DHH Ingalls ने किया जो 1965 में प्रकाशित हुआ। विष्णु गुप्त के पंचतंत्र का अंग्रेजी अनुवाद एफ. एडगार्टन ने किया जो अमेरिका (न्यूहेवन) से 1924 में प्रकाशित हुआ।[7] अन्य रचनाओं में अभिनवगुप्त के 'तंत्रालोक' तथा पतंजलि के 'योगसूत्र' एवं वादरायण के 'वेदांत सूत्र' का इटेलियन में अनुवाद एनरिका गर्जिली ने किया। इसी प्रकार हर्ष की 'प्रियदर्शिका' का मूल संस्कृत से थाई में अनुवाद हरिदत्त शर्मा ने किया। 'पंचतंत्र' का पोलिश भाषा में अनुवाद जे. सेचसे ने किया।[8]

सारांश

अंत में यह कहा जा सकता है कि वैश्विक स्तर पर संवाद यों तो बहुत पहले से रहा है किंतु उपनिवेशवाद के कारण 18-19वीं शताब्दी में उपनिवेशवादी राजनीति के कारण भी इसकी ओर ध्यान गया। रामायण और महाभारत जैसी कालजयी रचनाओं के अनुवाद अकबर के शासनकाल में भी फारसी भाषा में कराए गए। महाभारत और रामायण न केवल उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियाँ हैं अपितु भारतीय जीवन को संपादित और प्रेरित करने वाली रचनाएँ भी हैं। इनकी प्रासंगिकता और समसामयिकता इनके जीवन-दर्शन में निहित है। कालिदास की रचनाएँ मानवीय संवेदना और प्रेम के मूल्य को रेखांकित ही नहीं करतीं अपितु स्थान एवं काल का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक शाश्वत दर्शन की प्रतिष्ठा करती है जिनमें सभी उन चरित्रों से अपना तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं। रामायण और महाभारत के अनुवादों के परिचय, प्रयोजन, अनुकूलन तथा औपनिवेशिक एजेंडे के साथ-साथ ही कालिदास की रचनाओं के अनुवाद की राजनीति एवं उसकी व्याख्या पर ध्यान देने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण कालजयी रचनाओं के प्रमुखतः अंग्रेजी तथा फ्रेंच, जर्मन, पोलिश एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद भी उल्लेखनीय है। इस बहु-आयामी विवेचन से भारतीय कालजयी साहित्य के वैश्विक परिदृश्य का एक मानचित्र तो अवश्य बनता है।

❑

संदर्भ

1. रूटलेज एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज, संपा.: मोना बेकर, 1988, पृष्ठ 34
2. बालाजी रंगनाथन, ओरियंटलिज़्म एंड इंडिया, क्रिएटिव बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 71-72
3. कोलेक्टिड ऐस्सेज़ ऑफ ए.के. रामानुजम, संपा. विनय धारवाड़कर, 1988
4. वाचस्पति उपाध्याय, संस्कृत स्टडीज़ एब्रोड, लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2001
5. 'ट्रांसलेशन स्टडीज़ : क्रिटिकल कॉन्सेप्ट इन लिंग्वस्टिक्स', संपा. मोना बेकर (ट्रांसलेशन, कोलोनियलिज़्म एंड राइज़ ऑफ इंग्लिश -- तेजस्वी निरंजना), रूटलेज, लंदन एवं न्यूयॉर्क, भाग-iv, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 168

6-7. ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, संपा. अल बशम (Al Basham), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क; 14वाँ संस्करण, 2010

8. वाचस्पति उपाध्याय, संस्कृत स्टडीज़ एब्रोड, लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, 2001

आदम ज़गयेफ़्स्की
अनु. : मोनिका ब्रोवार्चिक एवं मारिय स्काकुय पुरी

एक पाठक का पत्र

मौत के बारे में जरूरत से ज्यादा है,
छायाओं के बारे में भी।
तुम लिखा करो जिंदगी,
साधारण दिन,
और सुव्यवस्था की लालसा पर।

स्कूल की घंटी
बन सकती है पैमाना
अनुशासन का,
और विद्वता का भी।

मौत के बारे में जरूरत से ज्यादा,
और बहुत ज्यादा
तमोमय प्रबोधन पर।

देखो,
तंग स्टेडियम में
जनता की भीड़
गाती है घृणा के राष्ट्र-गीत।

संगीत ज्यादा है
सहमति, शांति,
अक्ल कम।

तुम लिखो उन पलों के बारे में,
जब दोस्ती की पुलिया
लगती है ज्यादा मजबूत
निराशा से।

और प्यार,
लंबी शामों,
पेड़ों,
और प्रकाश के
अनंत धीरज पर।

❑

रमेश कुमारी

राजस्थानी उपन्यास 'मेवै रा रूंख' के हिंदी अनुवाद की समस्याएँ

अन्नराम सुदामा (जन्म 1923, रूमियाँ, बीमानेर) द्वारा रचित राजस्थानी उपन्यास 'मेवै रा रूंख' साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका हिंदी अनुवाद 'महाजनी महात्म्य' शीर्षक से स्वयं लेखक ने ही किया है। 'मेवै रा रूंख' उपन्यास में राजस्थानी समाज के रीति-रिवाज, परंपराएँ, त्योहार, परिवार, महंतों एवं महाजनों द्वारा ग्रामीणों का शोषण के साथ-साथ समसामयिक राजनीतिक घटनाओं का अचूक विश्लेषण किया गया है। इसके अलावा, इस उपन्यास में ग्रामीण जन-जीवन का सशक्त चित्रण और गहन मानवीय संवेदना विन्यस्त हैं जो इसे भारतीय कथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण धरोहर का दर्जा प्रदान करती है। इसलिए इस कृति को 1977 ई. में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया है।

'मेवै रा रूंख' का समाज और लोक, उपन्यास के शीर्षक से एकदम विपरीत है। राजस्थानी भाषा में 'मेवै रा रूंख' का शाब्दिक अर्थ होता है -- 'मिठाई का पेड़' लेकिन इस उपन्यास में 'मेवै' को केवल महंतजी, धनजी सेठ और हजारीमल जैसे शोषक ही खाते हैं बाकी सभी ग्रामीण अभाव, पीड़ा और शोषण से जूझते हुए कष्टप्रद जीवन बिताते हैं। उनके लिए 'मेवै' एक स्वप्न मात्र है जो यथार्थ में दूर-दूर तक नज़र नहीं आता है। प्रस्तुत उपन्यास के लेखक अन्नाराम सुदामा ने स्वयं इसका हिंदी अनुवाद 'महाजनी महात्म्य' शीर्षक से किया है जो उपन्यास में चित्रित सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थितियों के अनुकूल सटीक एवं सार्थक है। वैसे, 'महाजनी महात्म्य' शब्द अर्थशास्त्र के ज्यादा करीब लगता है। यदि अनुवादक इसकी जगह किसी साहित्यिक शब्द का प्रयोग करता तो और अधिक बेहतर होता।

मूल एवं अनूदित, दोनों कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। इसलिए अनुवाद की दृष्टि से इसकी

सार्थकता और महत्ता और भी बढ़ जाती है। अनुवादक के रूप में अन्नाराम सुदामा ने रचनाकार के नाते थोड़ी छूट अवश्य ली है जो अनुवाद की पाठनिष्ठता के संदर्भ में कमी लेकिन रचनाधर्मिता की दृष्टि से विशेषता भी कही जा सकती है। मूल पाठ का हिंदी अनुवाद 'महाजनी महात्म्य' मूल विषय-वस्तु को हिंदी पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। लेखक एवं अनुवादक एक ही होने के कारण मूल पाठ का लक्ष्य पाठ में सटीक अंतरण हो पाया है। किंतु अनुवाद की समस्याओं -- पर्याय चयन, भाषिक संरचना, सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावली, लोप एवं संयोजन आदि के कारण कहीं-कहीं अनूदित कृति की सफलता एवं सार्थकता जटिल भी हुई है। लेकिन अनुवादक ने समतुल्यता का सहारा लेते हुए मूल कथ्य को लक्ष्य पाठ में अंतरित करने का प्रयास किया है जो बहुत हद तक सार्थक भी साबित हुआ है।

लेखक एवं अनुवादक अन्नाराम सुदामा ने लक्ष्य पाठ पर मूल पाठ की अत्यधिक छाप छोड़ी है। 'मेवै रा रूंख' का लक्ष्य पाठ 'महाजनी महात्म्य' लक्ष्य भाषा हिंदी का उपन्यास कम और राजस्थानी उपन्यास ही अधिक लगता है क्योंकि अनुवादक ने अनुवादक की भूमिका का निर्वाह कम और लेखक की भूमिका ही अधिक निभाई है। मूल पाठ की अंतर्वस्तु का लक्ष्य पाठ में अंतरण करते हुए उन्होंने लक्ष्य भाषा की भाषिक संरचना और सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावली का बहुत कम ध्यान रखा है क्योंकि लक्ष्य पाठ में मूल भाषा का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। इसलिए यहाँ लक्ष्य पाठ में मूल पाठ के अंतरण और उनसे संबद्ध समस्याओं, लोप तथा संयोजन, समतुल्यता का विश्लेषण किया जाएगा जो किसी भी अनुवाद कर्म के मूल्यांकन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

1. अंतरण से संबंधित समस्याएँ :

मूल उपन्यास 'मेवै रा रूंख' और उसके लक्ष्य पाठ 'महाजनी महात्म्य' (अनूदित हिंदी उपन्यास) में अंतरण से संबद्ध समस्याएँ सामने आई हैं क्योंकि भाषा के स्तर पर राजस्थानी और हिंदी की प्रकृति भिन्न-भिन्न है। राजस्थानी भाषा की कुछ ध्वनियाँ जैसे ळ, ण, ड़ की अधिकता हिंदी भाषा में नहीं मिलती। इसी तरह, राजस्थान मरुभूमि होने के कारण वहाँ का समाज, संस्कृति, इनसे जुड़े मुहावरे-लोकोक्तियाँ, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज भिन्न हैं, जिनका पूर्णतः अंतरण संभव नहीं है।

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की अपनी-अपनी विशिष्ट भाषिक संरचना होती है, जिनके भाषिक रूपों में समान अर्थ मिलने की संभावना बहुत कम होती है। राजस्थानी भाषा की कुछ ध्वनियाँ भी हिंदी से भिन्न हैं जिनके अंतरण की समस्या अनुवादक के सामने आई, जैसे -- ''धन्नै बांणियै, एक लोड पूरो, ले'र नांख दियो एक साळ में।'' इसमें राजस्थानी भाषा की 'ळ' ध्वनि का लक्ष्य भाषा हिंदी में अंतरण संभव नहीं है क्योंकि 'ळ' ध्वनि हिंदी की 'ल' ध्वनि से भिन्न है। इसी तरह 'ले'र पद में 'ले' ध्वनि

परिवर्तन का बलाघात इसका अर्थ पविर्तन करता है, जिसका लक्ष्य भाषा में अंतरण बलाघात द्वारा संभव नहीं। वैसे इसका अंतरण आगम ध्वनि द्वारा किया जा सकता है। जैसे --'लेकर' इसमें 'क' ध्वनि जुड़कर ही इसके मूल अर्थ को अंतरित करती है। इसलिए अनुवादक को लक्ष्य भाषा हिंदी की प्रकृति के अनुसार अंतरण करना पड़ा, ''धनजी ने पूरा का पूरा एक ट्रक खरीद लिया था।'' इन दोनों वाक्यों में समान शाब्दिक अर्थ हालाँकि पूरी तरह से तो नहीं मिलता किंतु सूक्ष्म अर्थ या भावार्थ एक ही है।

अनुवाद कार्य में भाषाई समस्या के अतिरिक्त मूल पाठ में जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक सूचना मिलती है, उसका अंतरण भी वास्तविक समस्या खड़ा कर देता है क्योंकि भाषा और संस्कृति का अटूट संबंध होता है। भाषा के माध्यम से ही समाज और संस्कृति की जानकारी मिलती है। लेकिन अनुवाद कार्य में एक भाषा समाज-संस्कृति में निहित भाषिक रूपों का लक्ष्य भाषा में अंतरण नहीं हो पाता। 'मेवै रा रूंख' उपन्यास में भी ऐसे अनेक पद, वाक्य, पदबंध आदि भाषिक रूप हैं जिनका लक्ष्य भाषा में पूर्णतः अंतरण नहीं हो पाया है। जैसे -- 'माथो खुस्यो हो' पदबंध का राजस्थानी समाज-संस्कृति में अर्थ 'विधवा होना' माना जाता है जिसका लक्ष्य भाषा में अनुवादक ने 'बोरला छिन गया' किया है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि 'बोरला' हिंदी भाषा का शब्द नहीं है और न ही यह आभूषण मूल भाषा राजस्थानी के समाज की सुहागिन स्त्रियों के अलावा कहीं पहना जाता है। राजस्थान में 'बोरला' स्त्रियों द्वारा माथे पर बाँधा जाता है और यह विवाहित स्त्रियों के सुहाग की निशानी होता है इसलिए विधवा होने पर स्त्रियों के माथे से इसे उतार लिया जाता है। यही कारण है कि 'माथा छिनना' बोरला छिनने का प्रतीक बन गया जिसका लक्ष्य भाषा में अंतरण संभव नहीं है। 'सुहाग उजड़ना', 'सिंदूर पोंछना' आदि पदबंध विधवा होने के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं किंतु इनमें 'बोरला' या 'माथा' छिनने की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

इसी तरह मूल भाषा के समाज और संस्कृति में रचे-बसे लोक देवताओं का अंतरण लक्ष्य भाषा में संभव नहीं है, जिनका उल्लेख मूल उपन्यास 'मेवै रा रूंख' में हुआ है। जैसे -- 'रूणेचै रा राव', 'हे धोलै घोड़े रा असवार', 'पाबूजी राठौड़', 'मेवै रा रूंख', 'रामदेव जी' आदि का अंतरण लक्ष्य भाषा में नहीं हो पाया। इसलिए इन्हें ज्यों का त्यों लक्ष्य भाषा हिंदी में लिप्यंतरण किया गया -- 'रेणेचे के राव (भगवान)', 'हे नीले घोड़े के असवार', 'पाबूजी राठौड़' (राजस्थान का एक प्रसिद्ध ग्राम देवता), 'गोगापीर', 'रामदेव जी'। लेकिन इनसे मूल पाठ में निहित आस्था, विश्वास की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

2. लोप एवं संयोजन :

अनुवाद मूल भाषा से लक्ष्य भाषा तक की यात्रा है, जिसे कई चरणों से गुजरना पड़ता है। अनुवाद कला भी है और विज्ञान भी। सफल अनुवाद उसे ही समझा जाता

है जिसमें मूल कृति के शब्दों एवं अर्थों का संतुलित अनुवाद लक्ष्य कृति में हुआ हो। इसकी सफलता कुशल अनुवादक पर निर्भर करती है, जिसे मूल भाषा में निहित विषय-वस्तु को लक्ष्य भाषा में पूर्ण रूप से अनूदित करना पड़ता है। मूल भाषा की संरचना, सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावली आदि की जटिलता के कारण लक्ष्य भाषा में मूल विषय-वस्तु को अनूदित करते समय या तो कुछ अंश छूट जाता है या फिर अनुवादक विस्तार करते हुए कुछ न कुछ जोड़ देता है। यही लोप और संयोजन अनुवाद दोष के अंतर्गत आते हैं। लोप में मूल भाषा के अंश या शब्द छूट जाते हैं या छोड़ दिए जाते हैं और संयोजन में अनुवादक मूल पाठ के साथ लक्ष्य पाठ में कुछ अंश अपनी तरफ से जोड़ देता है।

समीक्षा उपन्यास में अनुवादक ने जाने-अनजाने में लोप करने के साथ-साथ संयोजन भी किया है, जो लेखक और अनुवादक एक होने के कारण मिलने वाली छूट के कारण किया गया अथवा मूल विषय-वस्तु की अर्थ-गंभीरता एवं संप्रेषणीयता को बढ़ाने के लिए किया गया। लेकिन इससे अनुवाद कार्य की निष्पक्षता अवश्य प्रभावित हुई।

अनूदित उपन्यास में अनेक लंबे-लंबे वाक्यांशों को जोड़ा गया, जैसे -- नत्थू और जीसुख नाई का वार्तालाप मूल पाठ में नहीं है, लेकिन लक्ष्य पाठ में उसका संयोजन किया गया। इसी तरह, सूरदास के सामने अपनी पीड़ा कहने वाली स्त्री के कथन के अनुवाद में भी संयोजन किया गया है, ''मूं में आयोड़ी रोटी खोसीजै जद जी तो घणों हीं दुख पावै पण देखो रामदेबाबो अबकै किसी घड़ बैठे, करसी सो सिर पर हैं।'' इसमें संयोजन करते हुए हिंदी अनुवाद किया गया है, ''अरे, होठों के पास आई रोटी जब छीन ली जाती है, तो मन की पीड़ा बरबस उफन पड़ती है और इसे पीने की हमारी आदत बन गई है, आदत यह अब और न पले हम में, बात तब बने। देखते हैं, अब की बार महर रामदेव बाबा की किस तरफ करवट लेती है?'' तत्कालीन राजनीति में शामिल बुराइयों के बारे में शिवनाथ और धीरजी की परस्पर बातचीत में धीरजी के संवाद का संयोजन भी किया गया है।

पं. रामधन की अंतःपीड़ा का भी अनूदित कृति में विस्तार किया गया है, ''रामधन आ तो गयो पण मन उदास, पग भारी अर मन मथीजै हो। कीं क्रांति कर सकें, बै पुरजा घसीज्याँ बरस बीतग्या हो।'' इसके हिंदी अनुवाद को विस्तृत किया गया है, ''रामधन चल दिया, पर मन उसका खिन्न, पैर बोझिल और सोच पैंदे बैठता। रह-रह यही आता, क्यों आया यह भार दोनों यहाँ? न सेठ से मिलेगा योग्यता का प्रमाण-पत्र मुझे और न गाँव के आम आदमी से ही। मेवे के गाछों की ठंडी छाया से तो ठगा गया जड़लिप्सा में, फेंका पत्थर वापस कैसे अए? आत्मग्लानि का भार उसका बढ़ता ही जा रहा था।''

इसके अतिरिक्त लक्ष्य पाठ में अनेक लोकोक्ति, मुहावरों का भी संयोजन किया गया है, जैसे --

''चोर की माँ घड़े में मुँह रखकर सोती है, इसलिए कि रोना उसका कोई सुन न ले।'', ''कीड़ी संचै तीतर खाए, पापी का धन प्रलै जाए।'', ''भार तो भीत ही सहेगी, टाटी में कितना दम।'', ''जंगल में मंगल।'', ''रोए बिना तो माँ भी नहीं चुंघाती।'', ''न बाबा आए और न ताली बजे।'', ''मामा का ब्याह और माँ परोसनी वाली।'', ''तिलक भी मुँह देखकर करते हैं।'', ''बींद के मुँह से लार गिरे तो बाराती थोड़े ही पोछेंगे उसे।''

इन सभी मुहावरों और लोकोक्तियों का उल्लेख मूल पाठ में नहीं हुआ है। लक्ष्य पाठ में मूल कथ्य का विस्तार करते हुए इनका संयोजन किया गया है। जैसे -- ''खाली बिरवा सूं ही कांई हुवैं, झोला नहीं बाजे, पून में सुवाव हुवें, घणी बातां चाई जै।'' इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए अनूदित कृति में लोकोक्ति का संयोजन किया गया है, ''अकेली बरखा ही तो क्या करे? आसोज में लूएँ भी तो चलेंगी? उस समय दो-दो अँगुल ही छींटें गिर जाए, तो सोने में सुगंध न गिरे तो धान आधा भी पल्ले न पड़े। हवा अनुकूल न हो तो ओसाई भी कैसे करें। टिड्डी दर आ पड़े, तो डंठल ही पल्ले मुश्किल से पड़े।''

अनूदित उपन्यास में अनुवादक ने कहीं-कहीं मुहावरे और लोकोक्तियों का शाब्दिक अनुवाद ही किया है। जैसे --

राजस्थानी : ''मटकी में पाणी गरम, चिड़ियाँ न्हावै धूड़।''
''ईंड़ा ले कीड़ी चढ़ै, तो बिरखा भरपूर।''

हिंदी : ''मटकी में पानी गरम, चिड़ियाँ न्हावै धूड़।''
''अंडे ले चींटी चढ़े, तो बरखा हो भरपूर।''

इसमें भी 'न्हावै' और 'धूड़' को ज्यों का त्यों रख दिया गया जबकि 'नहाए' तथा 'धूल' होना चाहिए।

अनूदित उपन्यास में लोप और संयोजन के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि अनुवादक ने पात्रों के परस्पर वार्तालाप, मूल कथ्य का विस्तार, लोकोक्ति-मुहावरों का संयोजन, कर्त्ता की मनःस्थिति की व्याख्या, परिवेश विवरण में वृद्धि आदि संदर्भ के अनुसार किया है, जो कहीं-कहीं उपयुक्त प्रतीत होता है और कहीं-कहीं पर अनुपयुक्त। ऐसे में अनुपयुक्त वृद्धि अनुवाद कार्य की जटिलता को बढ़ाने वाली लगती है।

3. समतुल्यता का परिप्रेक्ष्य :

अनुवाद स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में रूपांतरण की भाषिक प्रक्रिया है जिसमें अनुवादक मूल पाठ की विषय-वस्तु के भाव, विचार, शैली, अर्थ का लक्ष्य भाषा में प्रकटीकरण करता है। अनुवादक के इस रचनात्मक प्रकटीकरण में जितनी समरूपता विद्यमान होगी अनुवाद उतना ही उत्कृष्ट होगा। इसी प्रक्रिया में मूल पाठ एवं अनूदित कृति की समरूपता ही समतुल्यता है। समतुल्य करने की प्रक्रिया में अनुवादक को तीन चरणों -- विश्लेषण, अंतरण और पुनर्रचना (पुनर्गठन) से गुजरना पड़ता है। अनुवाद की यात्रा मूल पाठ से

आरंभ होकर अनूदित कृति में पूर्ण होती है। इस यात्रा में अनुवाद एवं अनुवादक के लिए दो विषय महत्त्वपूर्ण होते हैं -- कथ्य और कथन। ''कथ्य के रूपांतरण का प्रश्न मुख्यतः अनुवादक की भाषिक क्षमता से जुड़ा हुआ है।''[1] इसलिए मूल भाषा में रूपाांतरण के लिए अनुवादक को न केवल दोनों भाषाओं के व्याकरणिक ज्ञान में निपुण होना होगा बल्कि लक्ष्य भाषा के सांस्कृतिक एवं सामाजिक शब्दों के समतुल्य अर्थपरक शब्दों का ज्ञान भी आवश्यक है, क्योंकि दो विभिन्न भाषाई क्षेत्रों में न केवल भाषाई भिन्नता होती है बल्कि शब्द प्रयोग एवं उनके अर्थ में भी अंतर पाया जाता है।

अनूदित कृति में समतुल्यता को संतुलित करना कठिन होता है, विशेषकर जब किसी कृति के शीर्षक का अनुवाद करना हो (जैसा कि 'मेवै रा रूंख' उपन्यास के शीर्षक का अनुवाद 'महाजनी महात्म्य' किया है)। शाब्दिक दृष्टि से नहीं इसका अनुवाद अर्थी समतुल्यता के आधार पर संभव हो पाया।

सामान्यतः अनूदित कृति मूल पाठ की हू-ब-हू कॉपी नहीं होती। परंतु अनुवादक उसमें समतुल्यता को पूर्णतः लागू करने का प्रयास करता है। इसलिए इस भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी का मानना है कि ''अनूदित कृति में दो भाषाओं की संरचना और संस्कार एक-दूसरे में निहित होकर संश्लिष्ट रूप में स्थित होते हैं। एक ओर इसमें मूल कृति का संप्रेष्य कथ्य तथा कलात्मक बनावट का दबाव रहता है और दूसरी ओर लक्ष्य भाषा की अपनी संपूर्ण व्यवस्था तथा सामाजिक और सांस्कृतिक संस्कार अनूदित पाठ को अपना स्वरूप प्रदान करते हैं।''[2] वहीं न्यूबर्ट ने समतुल्यता को शब्द, अर्थ एवं व्यवहार के आधार पर देखने का प्रयास किया है। उन्होंने प्रतीक सिद्धांत की संकल्पना के आधार पर समतुल्यता की व्याख्या करते हुए इसके ''वाक्यपूरक, शब्दार्थपूरक और व्यावहारपूरक प्रकारों का वर्णन किया है।''[3] अनुवाद के बहुआयामी और बहुस्तरीय रूप को ध्यान में रखते हुए नाइडा ने समतुल्यता के दो प्रकार बताए हैं -- रूपक समतुल्यता और गत्यात्मक समतुल्यता। ''रूपक समतुल्यता में कथ्य के रूप और मंतव्य पर ध्यान दिया जाता है और दूसरा गत्यात्मक समतुल्यता जिसमें इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि स्रोत भाषा के पाठ और लक्ष्य भाषा के पाठ को हृदयंगम करने वाले पाठक पर प्रभाव पड़ता है।''[4] चेक भाषाविद् आंतोन पोपोविच ने चार आधारों पर समतुल्यता का वर्गीकरण किया है -- भाषा परक, रूपावली परक, शैली परक और विन्यास क्रमागत।[5]

इसलिए समतुल्यता का विवेचन विभिन्न संदर्भों में किया जाता है जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, शैलीगत सौंदर्य और पाठ की विशिष्ट भूमिका का समावेश हो। साहित्यिक कृति में भावों और विचारों का समावेश होता है जिसमें प्रतीक विधान, बिंब विधान, सूक्ष्म अर्थवत्ता, व्यंग्यार्थ आदि अंतर्निहित होते हैं जिन्हें लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करना

होता है। इसलिए 'मेवै रा रूंख' राजस्थानी उपन्यास के अनूदित पाठ 'महाजनी महात्म्य', दोनों में समतुल्यता का विवेचन भाषा, भाव और शैली के आधार पर किया जा सकता है।

(क) भाषापरक समतुल्यता के आधार पर मूल पाठ 'मेवै रा रूंख' (राजस्थानी उपन्यास) और लक्ष्य पाठ 'महाजनी महात्म्य' (हिंदी उपन्यास) में समतुल्यता अनेक संदर्भों में प्रकट हुई है। भाषिक सामग्री ही भाषापरक समतुल्यता का आधार होती है, जिससे स्रोत भाषा के पाठ के शब्दों, पदबंधों, वाक्यों आदि के समतुल्य लक्ष्य भाषा में शब्दों, पदबंधों, वाक्यों आदि का चयन किया जाता है। प्रस्तुत अनूदित कार्य में भी भाषापरक समतुल्यता का ध्यान रखा गया है। जैसे -- उथळो -- औंधी, निनाण -- निराई, लोटड़ी -- लोटड़ी, पून -- हवा, दोरी -- मुश्किल, बाखळ -- गलियारा, धणखरी -- अधिकतर, टोघड़िया -- बछड़ो, लाड -- मेहरबानी, भोमिया -- सामंत, माकळो -- काफी।

लेकिन अनेक संदर्भों में लिप्यंतरण मूल पाठ में निहित भाव को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करने में सक्षम नहीं हुआ बल्कि लक्ष्य भाषा के पाठकों के लिए मूल अर्थ को समझना जटिल हो गया है। जैसे -- खौरियै -- खरोटिया, डोकरै -- डोकरे, लोटड़ी -- लोटड़ी, हरख -- हरख, टोकरी -- टोकरियाँ, टाट -- टाट, कतरनी -- कतरनी, उरिया -- उरली तरफ। इन राजस्थानी शब्दों का केवल हिंदी शब्दानुवाद किया गया है, जो मूल पाठ के भाव को लक्ष्य पाठ में दर्शाने के लिए पर्याप्त नहीं है।

अनूदित रचना में **(ख) भावपरक समतुल्यता** का भी सहारा लिया गया है, जो स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। इसमें भाषिक अभिव्यक्ति की अपेक्षा संप्रेष्य कथन पर अधिक बल दिया जाता है और बाह्य स्तर की अपेक्षा आंतरिक स्तर पर अर्थ का निर्धारण किया जाता है। जैसे -- "धीणो धापो लूंठो।" -- "ठाणों पर भैंस और गाय बँधी हैं।"; "अर गाँव में सोभा अर पुन री जड़ हरी।" -- "यहाँ आपकी शोभा और आगे आपकी सीट सुरक्षित।" इसी तरह 'चाँदी रो एक बोरिया' का हिंदी अनुवाद 'एक अँगूठी चाँदी की' किया गया है। यहाँ 'बोरिया' अर्थात् 'बोरला' (राजस्थानी समाज में स्त्रियों द्वारा माथे पर पहने जाने वाला एक आभूषण होता है जो सुहाग का प्रतीक है)। सगाई के अवसर पर ससुराल वालों की तरफ से लड़की को पहनाया जाता है जिसका हिंदी अनुवाद 'अँगूठी' किया गया है जो हिंदी समाज में सगाई के अवसर पर पहनाई जाती है। यहाँ भावानुवाद द्वारा आभूषणों से जुड़े भाव को दर्शाया गया है जो वस्तु की अपेक्षा भाव की दृष्टि से समतुल्य है। इसी तरह सौतेली माँ के स्वभाव के बारे में बताते हुए कहे गए कथन के अनुवाद में भावपरक समतुल्यता समाहित है -- "नातै आयोड़ी माँ रो जी ई खातर कद पसीजै?" "उसकी जगह आई नई माँ का हृदय इसके लिए पिघले ही क्यों?" इसमें 'नातै आयोड़ी माँ' का भावानुवाद 'उसकी

जगह आई नई माँ' किया गया है, जो मूल पाठ में निहित भावार्थ को स्पष्ट करता है।

इसी तरह राजस्थानी भाषा के स्थानीय शब्दों का हिंदी अनुवाद करते हुए भावपरक समतुल्यता का सहारा लिया गया है। जैसे -- कांटे -- जहरीले जीव, पान -- साँप और बाँडी, लोटिय -- बल्ब, पाखरिया -- दो चार चलते पर्जे, तिसवारी -- प्यास अनुभव, बाळनजोगा -- मरनजोग, खोलैनामा -- गोदनामा, आंटो -- बुनने की विधि।

(ग) प्रस्तुत अनुवाद कार्य में **शैलीपरक समतुल्यता** भी अपनाई गई है। साहित्यिक कृति होने के कारण इसमें औपचारिक, लिखित, मौखिक, सामाजिक आदि सभी प्रकार की शैलियाँ अपनाई गई हैं। इसमें मूल पाठ एवं लक्ष्य पाठ में मालिक-मजदूर का वार्तालाप, पंडित, मास्टर, नेता की भाषा आदि की सामाजिक-सांस्कृतिक वर्गगत भिन्नता आदि का ध्यान रखा गया है। जैसे पंडित की भाषा संस्कृत है -- ''अकाल मृत्यु हरणम् सर्व व्यधि विनाशम् / विष्णोदकं पीत्वा, पुनर्जन्म न विधते।।''

इसी तरह, मैला ढोने का काम करने वाली मेहतरानी की भाषा में दयनीयता, विवशता और सम्मान का भाव है। वह अपनी मेहनत का पारिश्रमिक लेने के लिए गिड़गिड़ाती है, रहम करने की गुहार करती है। जैसे, ''सेठाणी जी सा, महीनो हुग्यो एक रिपियो देवो अर एक कोई, कोटड़ो बगसीस करो।'' अनूदित रचना में भाषा के स्तर पर निहित इस याचना-भाव की समतुल्यता का भली प्रकार से ध्यान रखा गया है -- ''सेठानीजी सा, महीना हो गया, एक रुपया और एक कोट की मैर (महर) करें।''

निष्कर्षतः अनुवाद प्रक्रिया तीन सिद्धांतों -- विश्लेषण, अंतरण और पुनर्गठन से पूर्ण होती है। इस प्रक्रिया का अनुकरण करने के बाद भी लोप और संयोजन, समतुल्यता के कारण इसमें अनेक समस्याएँ सामने आती हैं, जिनका समाधान अनुवादक की कुशलता पर निर्भर करता है। अनूदित उपन्यास 'महाजनी महात्म्य' में इन सभी समस्याओं का समाधान अनुवादक ने पाठ की प्रकृति के अनुसार करने का प्रयास किया है, लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक पदावली एवं लोक आस्था, स्थानीयता, आँचलिकता के कारण कुछ पदों का पूरी तरह अनुवाद नहीं हो पाया है।

❑

संदर्भ

1. अनुवाद विज्ञान की भूमिका, कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 169
2. अनुवाद विज्ञान एवं अनुप्रयोग, डॉ. नगेंद्र, पृ. 61
3. अनुवाद विज्ञान की भूमिका, कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 170
4. अनुवाद विज्ञान सिद्धांत एवं अनुप्रयोग, डॉ. नगेंद्र, पृ. 62
5. अनुवाद विज्ञान की भूमिका, कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ. 171

Dr. Pankaj Bhan

Translating an Advertisement

As an important constituent of the mass media, advertisements play a significant role in transmitting messages to the masses. Written in evocative phrases and pithy sentences and laced with puns, metaphors and witticisms, these hit the right chord in the target audience's heart and are often more effective than lengthy features or persuasive argumentation.

In a multi-lingual country like India with over a thousand languages, we lack resources or sometimes even the expertise to write independent ad copies in all these languages. So as a via media that saves resources, we write the message in English and then, if necessary, send it to the respective language units where they can be translated into Indian languages. We have been doing this for years and thus giving little space to Indian language writers/copywriters to create an independent copy in their respective languages. It is no surprise that the ad world in India is dominated by English speaking copywriters and almost all major ad companies/units, both private and public sector, cater only to English speaking/knowing target audiences. When ads do appear in Indian languages, these are only translated shadow copies of the master copy created by an English speaking elite. The ad agencies, avers R.V. Narayan, 'write glibly in the foreign tongue and the clients, with much urbanised bosses on top, are carried away by the puns and funs of the Queen's English' (Narayan, 1988).

This rather unimaginative process of translation creates a host of problems. Some of these are listed below:

Problems in the Process of Translation

(a) Disconnect between language and visuals: In an ad copy, the message is often accompanied by visuals, which are meant to support the text. In the translation process, while the language of the text can be translated, the visuals cannot. Also, the visuals in the English copy are

taken from an urban context, often from the upper echelons of society. This creates a disconnect between the translated message and the socio-culturally distanced visuals, which are out of sync with the local culture. The result is that the translated ad does not carry home the message it is intended to do.

(b) Unimaginative word-for-word translation: While translating a message from English into an Indian language, a translator often takes recourse to word-for-word or sentence-to-sentence translation. This process of translation cannot be applied to the translation of an advertisement. The reason is that the text in an ad is not an ordinary language text that can be manipulated through this process. It needs an exceptional amount of creativity to translate an ad copy from English into any Indian language. Let us consider some punch lines in some popular ads highlighting certain consumer products and visualise their transliterated versions in Hindi:

- Utterly, butterly delicious (Amul Butter)
- No one can just beat a Bajaj (Bajaj Scooter)
- The Complete Man (Raymond Suiting)
- No one can eat just one (Ruffle Lays)

Obviously, a literal translation will impair communication with their communicability. So, a creative reinterpretation of the original English ad text and writing it out in Hindi with a fresh perspective and innovative use of language is a must without which the ad will not be able to communicate its message.

(c) Target group differentiation: An ad is written keeping a target audience in mind as well as the language of the text, the linguistic level and the cultural background of the target group. The target group of a consumer item like a mobile phone (urban, upper-class young people) is different from that of a government ad highlighting the use of iodised salt (poor and marginalised sections, mostly based in rural India). The ad copy written for the first group is ideally written in English in a style and visual pattern that can hold the attention of the target group it is meant to cater to. Such a message cannot be conveyed in an Indian language in the same format. For translating such a copy into an Indian language, the translator will have to revisualise the context and fit in the message in a different format and linguistic level.

Conclusion

But then what is the way out? One way is to write the original message in Indian languages. There is enough talent and creativity among copywriters writing in Indian languages and a good copy can be created. Visualisers too can add appropriately appealing visuals to go with it. If it cannot be done

at one go, it can be done in Hindi to begin with and instead of creating a master copy in English, the same can be done in Hindi. It will be more fruitful to get translations done from Hindi into other Indian languages rather than from English. Because of the socio-cultural affinity of Hindi with other Indian languages, the message written in Hindi can be transferred into other Indian languages more easily and more authentically than it can be done from English. Cultural homogeneity helps achieve linguistic and cultural equivalence more easily and effectively.

Even when we create a master copy in Hindi instead of English, translations or adaptations in other languages have to be done. For this, we need experienced and highly skilled translators who undertake translations/adaptations of ad copies doing full justice to the cultural and linguistic sensitivities of the text in hand. This entails:

- Concern for the message to be transmitted.
- A fairly good understanding of the SL.
- An excellent command over the TL.
- A flair for style, creative use of language and sensitive editing.
- An awareness of the cultural matrix of the SL and the TL and areas where these can pose problems.

Translating an ad copy from one language into another is a semi-creative endeavour and ought to be approached with care and finesse. Translators engaged in 'literary' translations would be better equipped to do this job.

❑

डॉ. कुलभूषण शर्मा

साहित्यिक शोध में अनुवाद की भूमिका

जिज्ञासा मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है, जबकि संघर्ष जीवन की नियति। जीवन की विविधताओं के परिणामस्वरूप मानव अनेक अनुभवों, संघर्षों और परिस्थितियों के बीच से गुजरता है। ऐसे में उसकी कुछ अनुभूतियाँ उसे आत्मविश्वास, उत्साह एवं उमंग से परिपूर्ण कर देती हैं तो कुछ के कारण वह निराशा के गहरे गर्त में गिरता चला जाता है। इन्हीं सुख एवं दुखमयी अनुभूतियों को समेट कर प्रायः कुछ सहृदय संवेदनशील व्यक्ति साहित्य का सृजन करते हैं, तो कुछ इन बातों को रोजमर्रा की जिंदगी का एक हिस्सा मानकर सरलता से विस्मृत कर बैठते हैं। वास्तव में संवेदनशील व्यक्ति द्वारा रचित विचारों का पुलिंदा ही साहित्य है जिसमें जीवन के अथाह विचार और मानवीय मूल्य अनुस्यूत रहते हैं। साहित्य का पाठक इन मूल्यों-आदर्शों को समेटने की कोशिश करता है तथा उसका विशिष्ट अध्ययन-विश्लेषण करके उसे प्रबुद्ध जन-मानस तक पहुँचाता है। यह कार्य प्रायः शोध का ही एक हिस्सा है। शोध-कर्म अनेक रूपों में संचालित होता है। यह कहीं एक साहित्यकार पर आधारित होता है, कहीं दो-तीन साहित्यकारों पर तो कहीं साहित्य के सैद्धांतिक पक्षों पर। शोधार्थी अपने विषय का अध्ययन करने हेतु विविध भाषाओं के विचारों को आत्मसात करता है और जरूरत के अनुसार अपने शोध-प्रबंध में शामिल भी करता है। तब वहाँ अनुवाद जरूरी हो जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शोध के क्षेत्र में अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस विषय पर विस्तृत चर्चा से पूर्व शोध एवं अनुवाद संबंधी मूलभूत अवधारणाओं को समझना जरूरी है।

'अनुसंधान' (Research) शब्द से तात्पर्य

'शोध' या 'अनुसंधान' अंग्रजी शब्द 'रिसर्च' (Research) का हिंदी रूप है। इसका स्वरूप पिछले पचास-साठ वर्षों से ही स्थिर हुआ है। आज यह एक पूर्ण उपलब्धि का

माध्यम बन गया है जिससे एक पूरी प्रविधि जुड़ी हुई है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'अनुसंधान' शब्द 'अनु' उपसर्ग (पीछे) तथा 'संधान' शब्द (विशिष्ट दिशा में प्रवृत्त होना) के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है -- 'किसी विशिष्ट दिशा में लक्ष्य सामने रखकर बढ़ना।' वास्तव में अनुसंधान या शोध द्वारा अनुपलब्ध सामग्री को उपलब्ध करना, परीक्षा-समीक्षा करना तथा इनके आधार पर विवेचन कर निर्णय-निष्कर्ष निकालना आदि कर्म किए जाते हैं। हिंदी में अनुसंधान के पर्याय रूप में 'शोध', 'अन्वेषण', 'खोज', 'गवेषणा', 'मीमांसा', 'अनुशीलन', 'परीक्षण' आदि शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार 'रिसर्च' के पर्यायवाची रूप 'search', 'enquire', 'observation', 'investigation', 'examine', 'ascertain' आदि शब्द मिलते हैं।

ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार ही शोध कर्म है। शोध में प्रायः दो रूप विद्यमान रहते हैं -- तथ्यों के आधार पर एक नई अवधारणा या मत को जन्म देना तथा उपलब्ध तथ्यों की पुनर्व्याख्या करना। अतः शोध की उपयुक्त परिभाषा यही हो सकती है कि उपलब्ध तथ्यों के आधार पर ऐसे तथ्यों को जिसकी जानकारी पहले से किसी को न हुई हो अथवा उपलब्ध तथ्य जिसकी जानकारी तो हो उसे पुनः नवीन रूप से व्याख्यायित करना, शुद्ध करना तथा प्रकट करना ही शोध है।

शोध-कर्म को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है -- 'साहित्यिक शोध' एवं 'साहित्येतर शोध'। साहित्यिक शोध एक व्यापक शब्द है जो साहित्य से संबंधित होता हुआ भी किसी निश्चित सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। साहित्य संपूर्ण मानव-जीवन की व्याख्या करता है। अतः साहित्यिक शोध के अंतर्गत संपूर्ण जीवन एवं व्यवहार भी समाविष्ट हो जाता है। साहित्यिक शोध पूर्णतः तथ्यपरक होता है। साहित्यिक शोधार्थी को तथ्यों के पीछे दौड़ना पड़ता है और जहाँ तक उसके प्रतिपाद्य विषय की सीमा होती है वहाँ तक पहुँचकर वह रुककर सारी दौड़-धूप और छानबीन के बाद एक प्रामाणिक एवं निश्चयात्मक मार्ग प्रशस्त करता है। अतः शोध का संबंध मनुष्य की जन्मजात वृत्ति से माना जाता है। यह युगों-युगों तक सत्प्रेरणा प्रदान कर मानव के विकास में अपनी भूमिका निभाता है।

'अनुवाद' (Translation) क्या है?

अनुवाद अत्यंत प्राचीन एवं श्रम-साध्य कला है। यह भाषिक प्रक्रिया का ऐसा रूप है जिसमें स्रोत भाषा के विचारों को उसी रूप में समान पर्यायों के साथ लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। अनुवाद प्रायः स्रोत भाषा के वाक्य को लक्ष्य भाषा के वाक्य में कह देना भर नहीं है बल्कि यह दो संस्कृतियों के मिलान की एक श्रम-साध्य पद्धति है। 'अनुवाद' शब्द की व्युत्पत्ति 'वद्' धातु (बोलना) में 'अनु' उपसर्ग (पीछे)

और 'घञ' प्रत्यय के लगने से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ है -- किसी के कहने के बाद कहना, बाद का कथन, पुनःकथन या पुनरुक्ति। प्राचीन संस्कृत एवं भारतीय साहित्यकार 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करते रहे हैं। लेकिन आधुनिक भारतीय समाज में अनुवाद जिस रूप में प्रयोग में लाया जा रहा है वह अंग्रेजी शब्द 'ट्रांसलेशन' का हिंदी पर्याय है। अंग्रेजी शब्द 'ट्रांसलेशन' का सामान्य अर्थ है -- ''एक स्थान बिंदु से दूसरे स्थान बिंदु पर ले जाना या पार वाहन।'' यह पार वाहन भाषिक पाठ से संबंधित है अर्थात् स्रोत भाषा के भाषिक पाठ को लक्ष्य भाषा के भाषिक पाठ तक पहुँचाना ही अनुवाद है।

अनुवाद आज के समय की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। विज्ञान, टेक्नॉलॉजी, कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि ज्ञान की समस्त शाखाओं-प्रशाखाओं में अनुवाद की महत्ता बढ़ती जा रही है। अनुवाद की उपयोगिता सार्वभौमिक है। यही कारण है कि आज इसकी माँग बढ़ती जा रही है। अनुवाद वास्तव में राष्ट्र-सेवा का कर्म है जो मौन तोड़ने की दिशा में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहा है। अनुवाद केवल बौद्धिक उपलब्धि प्रदान कर रोजगार के अवसर ही प्रदान नहीं करता बल्कि दो भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों एवं समाजों के मध्य सेतु निर्माण कर समाज-सेवा का भी अवसर प्रदान करता है। अनुवादक बन पाठक न केवल ज्ञानी बनता है बल्कि आत्मविश्वास से पूरित हो जीवन के क्षेत्र में भी आगे बढ़ता जा रहा है।

शोध प्रक्रिया में अनुवाद की भूमिका

साहित्यिक शोध एवं अनुवाद के संदर्भ में उपर्युक्त तात्विक विश्लेषण से एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि दोनों ही संकल्पनाएँ समाज-कल्याण का दूसरा रूप है जिसमें श्रम एवं बुद्धि का समन्वय रहता है। साहित्यिक शोध में सबसे पहले किसी विषय का चयन किया जाता है। विषय शोध-कार्य का आधार या बीज है। शोधार्थी अपने शोध-विषय का चयन मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक अथवा व्यावहारिक आधार पर करता है।

शोधार्थी अपने मनोनुरूप विषय का चयनकर सामग्री की ओर बढ़ता है। इस संदर्भ में यदि तुलनात्मक या भाषाशास्त्रीय विषय चुनता है तो उसे अनूदित सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। यदि अनूदित सामग्री सरलता से प्राप्त हो जाए तो वह शीघ्र ही अपने शोध-विषय का चयन कर लेता है।

शोध-विषय चयन के पश्चात् सामग्री-संकलन की ओर शोधार्थी अग्रसर होता है। सामग्री संकलन के लिए आवश्यक है कि शोधार्थी ज्ञानी, विवेकशील, पारखी और कठोर परिश्रमी हो। इन गुणों के अभाव में सामग्री या तो प्राप्त ही नहीं होती या फिर अप्रामाणिक

सामग्री भी मिल जाती है। इसके अलावा, यह भी देखा गया है कि सामग्री विविध स्रोतों से भी प्राप्त हो जाती है। अतः अनुवाद की शरण प्राप्त करना जरूरी है। इसके माध्यम से विविध भाषाओं में उपलब्ध सामग्री को लक्ष्य भाषा में परिवर्तित कर उसे सर्वजन सुलभ बनाया जाता है। सामग्री संकलन के ही अंतर्गत उद्धरणों का भी विशेष महत्व रहा है। ये उद्धरण विविध पुस्तकों से प्राप्त होते हैं। वैसे तो इन्हें इनके रूप में ज्यों का त्यों लिखा जाता है किंतु उसे अन्य भाषियों के अनूदित रूप में पुनः लिख दिया जाता है। इस प्रकार सामग्री संकलन के क्षेत्र में अनुवाद अत्यंत महत्वपूर्ण रूप में दिखाई देता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि अनुवाद न केवल सामग्री संकलन में सहायता देता है बल्कि दूसरी भाषा की सामग्री को, उद्धरणों को भी एक नवीन रूप प्रदान कर ज्ञान के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः शोध की प्रक्रिया में अनुवाद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है।

सहित्यिक शोध में अनुवाद की भूमिका

शोध की प्रक्रिया में अनुवाद की भूमिका स्पष्ट करने के पश्चात् कुछ विविध प्रकार के शोध-ग्रंथों के अध्ययन द्वारा हम साहित्यिक शोध में अनुवाद की भूमिका को और भी स्पष्ट रूप में जान सकते हैं। इस संबंध में संतोष कुमारी जैन द्वारा लिखित 'हिंदी एवं बांग्ला भाषा का तुलनात्मक अध्ययन' (निदेशक : डॉ. भोलानाथ तिवारी), डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा लिखित 'कालिदास के ग्रंथों का हिंदी अनुवाद' (निर्देशक : डॉ. ओमप्रकाश); डॉ. श्याम बिहारी लाल शर्मा द्वारा लिखित 'पाश्चात्य नव्यालोचन और समसामयिक हिंदी आलोचना' (निर्देशक : डॉ. नगेंद्र) आदि शोध-प्रबंध विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। इन शोध प्रबंधों के अंतर्गत अपने मंतव्य उजागर करने हेतु काल्डवैल, कैलॉग आदि के व्याकरण विषयक अंग्रेजी ग्रंथ; टर्नर द्वारा रचित 'नेपाली डिक्शनरी'; 'The New Criticism', 'The New Romantics', 'The Meaning of meaning' सरीखे ग्रंथों का सहारा लिया गया। अतः ऐसे विषयों में अनुवाद के बिना एक कदम भी नहीं चला जा सकता। अनुवाद कार्य के सहारे ही शोध कर्म अपने जीवन मत उजागर करने की ओर आगे बढ़ पाता है। अतः अनुवाद न केवल किसी सामग्री को उल्था मात्र करने का कार्य करता है अपितु शोध प्रबंध लिखने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। वस्तुतः साहित्यिक अनुवादों का उद्देश्य निजेतर भाषा-साहित्य में उपलब्ध श्रेष्ठ विचारों, भावों और संवेदनाओं को अपनी भाषा में लाकर समाज का मंगल विधान करता है।

केवल अनुवादकीय, भाषावैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय विषयों में ही नहीं अपितु आदिकालीन, मध्यकालीन, आधुनिककालीन विषयों में भी अनुवाद एक सक्रिय भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, हरिवंश कोछड़ ने अपने 'अपभ्रंश साहित्य' शीर्षक शोध-प्रबंध में आदिकालीन

अपभ्रंश की समस्त रचनाओं का अनुशीलन किया तथा उसके महत्व की बात कही। इस संदर्भ में जहाँ एक ओर अनुवाद अपभ्रंश की रचनाओं को समझने में सहायता प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर विविध भाषाओं में उपलब्ध ग्रंथों को भी सुलभ बनाता है।

इस प्रकार विविध शोध-ग्रंथों का अध्ययन करने से पता चलता है कि वास्तव में शोध-कार्य ज्ञान प्रदान करने एवं ज्ञान प्रचार करने का कर्म है जिसे शोधार्थी अपने गहन अध्ययन, चिंतन, मनन एवं परिश्रम से पूर्ण करता है। सामग्री की सर्वसुलभता अनुवाद द्वारा ही संभव है। अतः अनुवाद भी एक ऐसा रूप धारण कर लेता है जो कि शोध के ही समान ज्ञान का प्रचार करता है। दोनों में अंतर केवल प्रयोग एवं परिणाम का ही है। शोध शोधार्थी के गहन चिंतन का परिणाम है, जो कि प्रायः मौलिक होता है, जबकि अनुवाद दूसरे के विचारों को लक्ष्य भाषा में उपलब्ध करा देता है। इस प्रकार अनुवाद ज्ञान के प्रचार में, राष्ट्र के निर्माण में एवं पाठकों के आनंद में वृद्धि का माध्यम बनता है जिसके द्वारा शोध न केवल उच्च कोटि का बनता है अपितु प्रामाणिक एवं पुष्ट बनकर भी साहित्य-पाठक वर्ग को एक उच्च कोटि की मनोभूमि एवं आदर्श प्रदान करता है।

शोध-कला अनुवाद के समान ही श्रम-साध्य कला है। शोधों की व्यापक जानकारी विविध पत्र-पत्रिकाओं तथा विविध भाषी कोशों से प्राप्त होती है। अतः उसे प्रयुक्त करने के लिए अनुवाद का ही सहारा लिया जाता है। साक्षात्कार के दौरान मिले विचारों को (जो यदि दूसरी भाषा में हों) तो उन्हें भी अनुवाद के द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। अनुवाद की महत्ता के कारण अनेक अनूदित ग्रंथों को आधार बनाकर आजकल शोध भी लिखे जा रहे हैं। शोध जिस प्रकार भाषा में सुधार लाता है, भाषा की वृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है ठीक उसी प्रकार अनुवाद भी नवीन शैलियों को (जो दूसरी संस्कृति में या भाषा में उपलब्ध हो) को जन्म देता है। इस प्रकार, अनुवाद एवं शोध दोनों कर्म साहित्य निर्माण एवं विकास में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। अंत में यही कहा जा सकता है कि शोध गहन चिंतन एवं विश्लेषण का परिणाम है जिसे प्रामाणिक एवं अद्यतन बनाने में अनुवाद एक अहम् भूमिका निभाता था, निभाता है और सदैव निभाता रहेगा।

❑

सं० 14021/6/96-स्था०(घ)
भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
(कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग)
.....
नई दिल्ली, दिनांक 24 जून, 1996

कार्यालय ज्ञापन

विषय:- भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किए जाने वाले वाक्सेतु अनुवाद डिप्लोमा को मान्यता।

....

मुझे, यह कहने का निदेश हुआ है कि मूल्यांकन बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश (4.1.96 को आयोजित अपनी बैठक में) पर सरकार ने केन्द्रीय सरकार के तहत पदों एवं सेवाओं में नियुक्ति के लिए अंग्रेजी विषय के साथ स्नातक डिग्री उत्तीर्ण करने के पश्चात अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद में एक वर्ष के डिप्लोमा की अपेक्षित योग्यता के रूप में भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किए जाने वाले वाक्सेतु अनुवाद डिप्लोमा को मान्यता देने का निर्णय किया है।

2. मंत्रालयों/विभागों से अनुरोध है कि वे इन अनुदेशों को मार्गदर्शन के लिए सभी संबंधितों के ध्यान में लाएं।

(के० के० झा)
निदेशक
दूरभाष सं० : 3011479.

सेवा में,
1. भारत सरकार के सभी मंत्रालय/विभाग
2. सभी संघ राज्य सरकारें/प्रशासन
3. राज्य सभा/लोक सभा सचिवालय
4. शिक्षा विभाग उनके दिनांक 20 मार्च, 1996 के पत्र फा० सं०-18-26/92-टी०डी० V/टी०एस० IV (खंड) के संदर्भ में
5. संघ लोक सेवा आयोग/कर्मचारी चयन आयोग
6. भारत के नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक
7. राष्ट्रीय अनु० जाति/अनु० जनजाति आयोग
8. कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के अंतर्गत सभी संबद्ध/अधीनस्थ कार्यालय
9. कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के सभी अनुभाग
10. 100 अतिरिक्त प्रतियां

No. 14021/6/96-Estt(D)
Government of India
Ministry of Personnel, P.G. & Pensions
(Department of Personnel & Training)
....

New Delhi, the 24 June, 1996.

OFFICE MEMORANDUM

Subject:- Recognition of Vaksetu Anuvad Diploma awarded by Bhartiya Anuvad Parishad, New Delhi.

The undersigned is directed to say that on the recommendation of the Board of Assessment (in its meeting held on 4.1.96) the Govt. have decided to recognise the Vaksetu Anuvad Diploma awarded by Bhartiya Anuvad Parishad, New Delhi, for the purpose of employment to posts and services, under the Central Government requiring one year diploma in English-Hindi translation, after graduation in English as a subject.

2. Ministries/Departments are requested to bring these instructions to the notice of all concerned for guidance.

(K.K.Jha)
Director
Tele No. 3011479.

To
1. All Ministries/Departments of the Govt. of India.
2. All Union Territory Government/Administrarion.
3. Rajya/Lok Sabha Secretariat.
4. Department of Education with reference to their letter No. F. 18-26/92-TD.V/TS.IV(pt.) dated 20th March, 1996.
5. UPSC/SSC.
6. Office of the Comptroller and Auditor General of India.
7. National Commission for SC/ST.
8. All attached/Subordinate offices under the Department of Personnel & Training.
9. All Sections of the Department of Personnel & Training.
10. 100 spare copies.